



वीर सेवा मन्दिर  
दिल्ली



क्रम संख्या — ६६६०  
काल नं० २६४ रा. ६५७  
स्वण्ड — संस्कृत

# धम्मपदं

[ मूल पाली, संस्कृत-छाया और हिन्दी अनुवाद सहित ]

अनुवादक

“महापरिडत्त” “त्रिपिटकाचार्य” राहुल सांकृत्यायन

प्रयाग

१९३३ ई०

प्रथम संस्करण }  
३००० प्रतियां }

{ मूल्य  
{ १५ आना

प्रकाशक  
ब्रह्मचारी देवप्रिय, बी० ए०  
प्रधानमंत्री  
महाबोधि-सभा, ऋषिपत्तन  
सारनाथ ( बनारस )

मुद्रक  
महेन्द्रनाथ पाण्डेय  
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस  
इलाहाबाद

लंकाद्वीपमें विद्यालंकार महाविद्यालयके अधिपति  
त्रिपिटकवागीश्वराचार्य स्नेहमूर्ति गुरुदेव  
लु० श्रीधर्मानन्द-नायक-महा-  
स्थविरपादके करकमलोंमें  
सादर समर्पित



## व्यवस्थापकीय वक्तव्य

रक्त-मांस भाषा-विचार सभी दृष्टियोंसे हिन्दीभाषाभाषी भगवान् बुद्धके उत्तराधिकारी हैं। इन्हीं के पूर्वजोंने उनके अमृतमय उपदेशोंको सर्व प्रथम अपनाया। इन्होंने ही दुनियामें भारतकी धार्मिक और सांस्कृतिक विजयदुन्दुभी बजाई। पूर्वजोंकी इस अद्भुत और अमर कीर्तिका स्मरण करते, किसका शिर ऊँचा न होगा। लेकिन, यह कितने शोककी बात है, कि मातृ-भाषा हिन्दीमें भगवान् के दिव्य संदेश नहींके बराबर हैं। इसी कमी को दूर करनेके लिये हिन्दीमें महाबोधि-ग्रन्थ-माला निकालनेका उपक्रम हुआ है। धम्मपद मालाका प्रथम पुष्प है। आगे निकलनेवाली पुस्तकोंके सस्तेपन और सुंदर छपाईका अनुमान इसी पुस्तकसे आप कर सकते हैं। मालाकी दूसरी पुस्तक होगी—मज्झिमनिकाय।

हम आशा करते हैं, कि हिन्दीप्रेमी सज्जन इस काममें हमारा हाथ बँटायेगे और आठ आना भेज कर मालाके स्थायी ग्राहक बन जायेंगे।

( ब्रह्मचारी ) देवप्रिय

प्रधानसूत्री, महाबोधि सभा,

ऋषिपतन, सारनाथ ( बनारस )

## प्रस्तावना

त्रिपिटक (=त्रिपिटक) अधिकांशतः भगवान् बुद्धके उपदेशोंका संग्रह है। त्रिपिटकका अर्थ है, तीन पिटारी। यह तीन पिटक हैं—  
सुत्त (=सूत्र), विनय और अभिधम्म (=अभिधर्म)।

१. सुत्तपिटक निम्नलिखित पाँच निकायोंमें विभक्त है—

१. दीघ-निकाय	३४ सुत्त (=सूक्त या सूत्र)
२. मज्झिम-नि.	१५२ सुत्त
३. संयुत्त-नि	५६ संयुत्त
४. अंगुत्तर-नि.	११ निपात
५. खुद्दक-नि.	१५ ग्रंथ

खुद्दक-निकायके १५ ग्रंथ यह हैं—

( १ ) खुद्दकपाठ	( ९ ) धेरी-गाथा
( २ ) धम्मपद	( १० ) जातक ( ५५० कथायें )
( ३ ) उदान	( ११ ) निद्देस ( सुल्ल-; महा-)
( ४ ) इतिवुत्तक	( १२ ) पटिसर्वाभदामग्ग
( ५ ) सुत्तनिपात	( १३ ) अपदान
( ६ ) विमान-वत्थु	( १४ ) बुद्धवंस



- ( ७ ) पेत-वत्थु                      ( १५ ) चरियापिटक  
( ८ ) थेर-गाथा

## २. विनयपिटक निम्न भागोंमें विभक्त है—

### १—सुत्तविभंग—

- |                      |        |                 |
|----------------------|--------|-----------------|
| ( १ ) भिक्षु-विभंग   | } या { | ( १ ) पाराजिक   |
| ( २ ) भिक्षुनी-विभंग |        | ( २ ) पाचित्तिय |

### २—खन्धक—

- ( १ ) महावग्ग  
( २ ) चुल्लवग्ग

### ३—परिवार

## ३. अभिधम्मपिटकमें निम्नलिखित सात ग्रंथ हैं—

- |                   |             |
|-------------------|-------------|
| १ धम्मसंगनी       | ५. कथावत्थु |
| २. विभंग          | ६. यमक      |
| ३. धातुकथा        | ७. पट्टान   |
| ४. पुग्गलपञ्जत्ति |             |

धम्मपद (= धर्मपद) त्रिपिटकके खुद्दकनिकाय विभागके पंद्रह ग्रंथों-मेंसे एक है। इसमें भगवान् गौतम बुद्धके मुखसे समय समयपर निकली ४२३ उपदेशगाथाओंका संग्रह है। चीनी तिब्बती आदि भाषाओंके पुराने अनुवादोंके अतिरिक्त, वर्तमान कालकी दुनियाकी सभी सम्बन्ध भाषाओंमें इसके अनुवाद मिलते हैं, अंग्रेजीमें तो प्रायः एक दर्जन हैं। भारतकी अन्य भाषाओंकी तरह हमारी हिन्दी में इसमें किसीसे पीछे नहीं है। जहाँ तक मुझे मालूम है, हिन्दीमें धम्मपदके अभी तक पाँच अनुवाद हो चुके हैं, जिनके लेखक हैं—

१. श्री सूर्यकुमारवर्मा                      हिन्दी, ( १९०४ ई० )
२. भदन्त चन्द्रमणि महास्थविर हिन्दी और पाली दोनों ( १९०९ ई० )

३. स्वामी सख्यदेव परिभाषक हिन्दी ( बुद्धगीता )

४. श्री विष्णुनारायण हिन्दी ( सं० १९८५ )

५. पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय पाली-हिन्दी ( १९३२ ई० )

पाँच अनुवादोंके होते छटेकी क्या आवश्यकता ?—इसका उत्तर आप पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी और महाबोधिसभाके मंत्रो ब्रह्मचारी देवप्रियसे पूछिये । मैने बहुत ननु-नच किया किन्तु उन्होने एक नहीं सुनी । ६ फरवरीसे ८ मार्च तक मै सुल्तानगज ( भागलपुर )में “गंगा”के पुरातत्त्वांकके सम्पादनके लिये श्री धूपनाथ सिंहका अतिथि था । सम्पादनका काम ही कम न था, उसपरसे वहाँ रहते दो लेख भी लिखने पड़े । उसी समय इस अनुवाद में भी हाथ लगा दिया । जो अंश बाकी रह गया था, उमे किताब को प्रेसमें देनेके बाद समाप्त किया । इस तरह “बुद्धचर्या”की भाँति “धम्मपद”में भी जल्दीसे काम लिया गया है । इससे पुस्तकमें प्रफ़्हीकी गलतियों नहीं रहगई, बल्कि जल्दीमें किये अनुवादकी पुनरावृत्ति न करनेसे अनुवादकी भाषाको और सरल नहीं बनाया जा सका, इन त्रुटियोंका मैं स्वयं दोषी हूँ ।

प्रथमे पहिले बारीक टाइटमें बाई और उस स्थानका नाम दिया है, जहाँ पर उक्त गाथा बुद्धके मुखसे निकली; दाहिनी ओर उस व्यक्तिका नाम है, जिसके प्रति या विषयमें उक्त गाथा कही गई । धम्मपदकी अट्ठकथा(=टीका)में हर एक गाथाका इतिहास भी दिया हुआ है; सक्षिप्त करके उमे देनेका विचार तो उठा, लेकिन समयभाव और ग्रंथविस्तारके भयसे वैसा नहीं किया जा सका ।

सुत्तपिटकके प्रायः १०० सूत्र, और विनयके कुछ अंशको मैने अपनी बुद्धचर्यामें अनुवादित किया है । भारतीय भाषाओंमें पाली ग्रंथोंका सबसे अधिक अनुवाद बंगलामे हुआ है । जातकोंका

बंगला अनुवाद कई जिल्लोंमें है। श्रीयुत चारुचन्द्र वसुने धम्मपदका पालीके साथ संस्कृत और बंगलामें अनुवाद किया है ( इस ग्रंथसे मुझे अपने काममें बड़ी सहायता मिली है, और इसके लिए मैं चारु बाबूका आभारी हूँ )। बंगलाके बाद दूसरा नम्बर मराठी का है, जिसमें आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बीके ग्रंथोंके अतिरिक्त सारे दीघनिकायका भी अनुवाद मिलता है। इस क्षेत्रमें हिन्दीका तीसरा नम्बर होना लज्जाकी बात है। मैंने अगले तीन चतुर्मासोंमें मज्झिम-निकाय, महावग्ग, और चुल्लवग्ग—इन तीन ग्रंथोंको हिन्दी में अनुवाद करनेका निश्चय किया है। यदि विघ्नयाधा न हुई, तो आशा है, इस वर्षके अन्तमें पाठक मज्झिम-निकायको हिन्दी रूप में देख लेंगे।

गुरुकृत्य भदन्त चन्द्रमणि महास्थविरने ही सर्व प्रथम धम्मपदका मूलपाली सहित हिन्दी अनुवाद किया था। उन्होंने अनुवादकी एक प्रति भेज दी थी; और सदाकी भाँति इस काममें भी उनसे बहुत प्रोत्साहन मिला; तदर्थ पूज्य महास्थविरका मैं कृतज्ञ हूँ।

प्रयाग  
७-४-१९३३ }

राहुल सांकृत्यायन

( ॥= )

## वर्ग-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
१—यमकवर्गो	१	१४—बुद्धवर्गो	८२
२—अप्पमादवर्गो	११	१५—सुखवर्गो	८९०
३—चित्तवर्गो	१६	१६—पियवर्गो	९६
४—पुण्यवर्गो	२१	१७—कोधवर्गो	१०१
५—बालवर्गो	२८	१८—मलवर्गो	१०७
६—पडितवर्गो	३५	१९—धम्मट्टवर्गो	११५
७—अर्हन्तवर्गो	४२	२०—मगवर्गो	१२२
८—सहस्रवर्गो	४७	२१—पकिण्णकवर्गो	१२९
९—पापवर्गो	५४	२२—निरयवर्गो	१३५
१०—दंडवर्गो	६०	२३—नागवर्गो	१४१
११—जरावर्गो	६७	२४—तण्हावर्गो	१४८
१२—अत्तवर्गो	७२	२५—भिक्षुवर्गो	१६०
१३—लोकवर्गो	७७	२६—ब्राह्मणवर्गो	१७०

गाथा-सूची

१८९

शब्द-सूची

१९७

नमो तस्स भगवतो अरहतोसम्मासम्बुद्धस्स

# धम्मपदं

## १—यमकवग्गो

स्थान—श्रावस्ती

व्याक्ति—चक्षुपाल ( धेर )

१—मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।

मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा ।

ततो 'नं दुस्खमन्वेति चक्कं 'व वहतो पदं ॥ १ ॥

( मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मनःश्रेष्ठा मनोमया

मनसा चेःप्रदुष्टेन भासते वा करोति वा ।

तत एनं दुःखमन्वेति चक्रमिव वहतः पदम् ॥ १ ॥ )

अनुवाद—सभी धर्मों (=कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों, या सुख दुःख आदि अनुभवों) का मन अग्रगामी है, मन (उनका) प्रधान है, (कर्म) मनोमय हैं। जब (कोई) सदोष मनसे (बात) बोलता है, या (काम) करता है, तो

वाहन ( बैल घोड़े ) के पैरोंको जैसे ( रथका ) पहिया अनुगमन करता है ( वैसेही ) उसका दु.ख अनुगमन करता है ।

श्रावस्ती

मट्टकुण्डली

२—मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।

मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा ।

ततो 'नं सुखमन्वेति छाया' व अनपायिनी ॥२॥

( मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मनःश्रेष्ठा मनोमयाः ।

मनसा चेत् प्रसन्नेन भाषते वा करोति वा ।

तत एतं सुखमन्वेति छायेवानपायिनी ॥२॥ )

अनुवाद—सभी धर्मोंका मन अग्रगण्य है, मन प्रधान है; ( कर्म ) मनोमय हैं । यदि ( कोई ) स्वच्छ मनसे धोलता या करता है, तो ( कभी ) न ( साथ ) छोड़नेवाली छायाकी तरह सुख उसका अनुगमन करता है ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

थुलतिस्स ( धेर )

३—अक्रोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।

ये च तं उपनयहन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥३॥

( अक्रोशीत् मां अबधीत् मां अजैषीत् मां अहार्षीत् मे ।

ये च तत् उपनयहन्ति तेषां वैरं न शाम्यति ॥३॥ )

अनुवाद—'मुझे गाली दिया', 'मुझे मारा', 'मुझे हरा दिया', 'मुझे लूट लिया' ( ऐसा ) जो ( मनमे ) बाँधते हैं, उनका वैर कभी शान्त नहीं होता ।

४—अक्रोच्छि मं अबधि मं अजिनि मं अहासि मे ।

ये तं न उपनयन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥

( अक्रोशीत् मां अबधीत् मां अजैषीत् मां अहार्पीत् मे ।

ये तत् नोपनयन्ति वैरं तेषूपशाम्यति ॥ ४ ॥ )

अनुवाद—‘मुझे गाली दिया’० ( ऐसा ) जो ( मनमें ) नहीं रखते  
उनका बैर शान्त हो जाता है ।

भावस्ती ( जेतवन )

काली ( यक्खिनी )

५—न हि वेरेण वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।

अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ ५ ॥

( न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन ।

अवैरेण च शाम्यन्ति, एष धर्मः सनातनः ॥ ५ ॥ )

अनुवाद—यहाँ ( संसारमें ) वैरसे वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर  
मे ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म (=नियम) है ।

भावस्ती ( जेतवन )

कोसम्बक भिक्खू

६—परे च न विजानन्ति मयमेत्य यमामसे ।

ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥ ६ ॥

( परे च न विजानन्ति वयमत्र यस्यामः ।

ये च तत्र विजानन्ति ततः शाम्यन्ति मेधगाः ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—अन्य ( अज्ञ लोग ) नहीं जानते, कि हम इस ( संसार )  
से जानेवाले हैं । जो इसे जानते हैं, फिर ( उनके )  
मनके ( सभी विकार ) शान्त हो जाते हैं ।

श्रावस्ती

चुल्लकाल, महाकाल

७—सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेषु असंवृतं ।  
 भोजनमिह अमत्तञ्जुं कुसीतं हीनवीरियं ।  
 तं वे पसहति मारो वातो स्क्ख 'व दुब्बलं ॥ ७ ॥  
 ( शुभमनुपश्यन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु असंवृतम् ।  
 भोजनेऽमात्रज्ञं कुसीदं हीनवीर्यम् ।  
 तं वै प्रसहति मारो वातो वृक्षमिव दुर्बलम् ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—( जो ) शुभ ही शुभ देखते विहरता है, इन्द्रियोंमें संयम न करनेवाला होता है, भोजनमें मात्राको नहीं जानता आलसी और उद्योगहीन होता है; उसे मार (=मनकी दुःप्रवृत्तियाँ ) ( वैसे ही ) पीड़ित करता है, जैसे दुर्बल वृक्षको हवा ।

८—असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंवृतं ।  
 भोजनमिह च मत्तञ्जुं सद्धं आरद्धवीरियं ।  
 तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं 'व प्व्वतं ॥ ८ ॥  
 ( असुभमनुपश्यन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंवृतम् ।  
 भोजने च मात्राज्ञं श्रद्धं आरब्धवीर्यम् ।  
 तं वै न प्रसहते मारो वातः शैलमिव पर्वतम् ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—जो अशुभ देखते विहरता, इन्द्रियोंको संयम करता, भोजनमें मात्राको जानता, श्रद्धावान् तथा उद्योगी है, उसे शिलाभय पर्वतको जैसे वायु नहीं हिला सकता, ( वैसेही ) मार नहीं ( हिला सकता ) ।



श्रावस्ती ( जेतवन )

देवदत्त

६—अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।

अपेतो दमसच्चेन न स कासावमरहति ॥६॥

( अनिक्कषायः काषायं यो घस्त्रं परिधास्यति ।

अपेतो दमस्त्याभ्यां न स काषायमर्हति ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—जो ( पुरुष ) ( राग, द्वेष आदि ) कषायों (=मलों) को बिना छोड़े काषाय वस्त्रको धारण करेगा, वह संयम-सशयसे परे हटा हुआ ( है ), और ( वह ) काषाय ( धारण ) करनेका अधिकारी नहीं है ।

१०—यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।

उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥ १० ॥

( यश्च वान्तकषायः स्यात् शीलेषु सुसमाहितः ।

उपेतो दम-स्त्याभ्यां स वै काषायमर्हति ॥ १० ॥ )

अनुवाद—जिसने कषायोंको वसन कर दिया है, जो आचार (=शील) से सुसम्पन्न, तथा सयम-वत्त्यसे संयुक्त है, वही काषाय ( वस्त्र )का अधिकारी है ।

राजगृह ( वेणुवन )

सजय

११—असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ।

ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥ ११ ॥

( असारे सारमतयः सारे चासारदर्शिनः ।

ते सारं नाधिगच्छन्ति मिथ्यासङ्कल्पगोचराः ॥ ११ ॥ )

अनुवाद—जो असारको सार समझते हैं, और सारको असार; वह झूठे संकल्पोंमें संलग्न ( पुरुष ) सारको नहीं प्राप्त करते हैं ।

१२—सारञ्च च सारतो जत्त्वा असारञ्च असारतो ।

ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥ १२ ॥

( सारं च सारतो ज्ञात्वा, असारं च असारतः ।

ते सारं अधिगच्छन्ति सम्यक्-सङ्कल्प-गोचराः ॥ १२ ॥ )

अनुवाद—जो सारको सार जानते हैं, और असार को असार; वह सच्चे संकल्पमें संलग्न ( पुरुष ) सारको प्राप्त करते हैं ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

नन्द ( थेर )

१३—यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति ।

एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥ १३ ॥

( यथागारं दुच्छन्नं वृष्टिः समतिविध्यति ।

एवं अभावितं चित्तं रागः समतिविध्यति ॥ १३ ॥ )

अनुवाद—जैसे ठोकरे न छाये घरमें वृष्टि धुल जाती है । वैसे ही अभावित ( = न संयम किये ) चित्तमें राग धुल जाता है ।

१४—यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठी न समतिविज्झति ।

एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥ १४ ॥

( यथागारं सुच्छन्नं वृष्टिर्न समतिविध्यति ।

एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविध्यति ॥ १४ ॥ )

अनुवाद—जैसे ठीकसे छाये घरमें वृष्टि नहीं धुसती, वैसे ही सुभावित चित्तमें राग नहीं धुसता ।

राजगृह ( वेणुवन )

चुन्द ( सूकारिक )

१५—इध सोचति पेच्च सोचति

पापकारी उभयत्थ सोचति ।

सो सोचति सो विहज्जति

दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ॥१५॥

( इह सोचति प्रेत्य सोचति पापकारी उभयत्र सोचति ।

स सोचति स विहन्यते दृष्ट्वा कर्म क्लिष्टमात्मनः ॥१५॥ )

अनुवाद—यहाँ ( इस लोकमें ) शोक करता है, मरनेके बाद शोक करता है, पाप करनेवाला दोनों ( लोक ) में शोक करता है । वह अपने मलिन कर्मोंको देखकर शोक करता है, पीडित होता है ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

धर्मिक ( उपासक )

१६—इध मोदति पेच्च मोदति

कतपुज्जो उभयत्थ मोदति ।

सो मोदति सो पमोदति

दिस्वा कम्मविमुद्धिमत्तनो ॥१६॥

( इह मोदते प्रेत्य मोदते कृतपुण्य उभयत्र मोदते ।

स मोदते स प्रमोदते दृष्ट्वा कर्मविशुद्धिमात्मनः ॥१६॥ )

अनुवाद—यहाँ प्रमुदित होता है, मरनेके बाद प्रमुदित होता है, जिसने पुण्य किया है, वह दोनों ही जगह प्रमुदित होता है । वह अपने कर्मोंकी शुद्धताको देखकर मुदित होता है, प्रमुदित होता है ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

देवदत्त

१७-इध तप्पति पेच्च तप्पति ,  
पापकारी उभयत्थ तप्पति ।  
पापं मे कतन्ति तप्पति ,  
भीय्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो ॥१७॥

( इह तप्यति प्रेत्य तप्यति पापकारी उभयत्र तप्यति ।

पापं मे कृतमिति तप्यति, भूयस्तप्यति दुर्गतिगतः ॥१७॥ )

अनुवाद—यहाँ संतप्त होता है, मरकर सन्तप्त होता है, पापकारी  
दोनों जगह सन्तप्त होता है । “मैंने पाप किया है”—यह  
( सोच ) सन्तप्त होता है ; दुर्गतिको प्राप्त हो और भी  
सन्तप्त होता है ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

सुमना देवी

१८-इध नन्दति पेच्च नन्दति ,  
कतपुञ्जो उभयत्थ नन्दति ।  
पुञ्जं मे कतन्ति नन्दति ,  
भीय्यो नन्दति सुगतिगतः ॥१८॥

( इह नन्दति प्रेत्य नन्दति कृतपुण्य उभयत्र नन्दति ।

पुण्यं मे कृतमिति नन्दति, भूयो नन्दति सुगतिगतः ॥१८॥ )

अनुवाद—यहाँ आनन्दित होता है, मरकर आनन्दित होता है ।  
जिसने पुण्य किया है, वह दोनों जगह आनन्दित होता है ।  
“मैंने पुण्य किया है”—यह ( सोच ) आनन्दित होता  
है ; सुगतिको प्राप्त हो और भी आनन्दित होता है ।

आवस्ती ( जेतवन )

दो मित्र भिक्षु

१६-वहुंपि चे संहितं<sup>१</sup> भासमानो ,  
 न तत्करो होति नरो पमत्तो ।  
 गोपो 'व गावो गणयं परेसं ,  
 न भागवा सामञ्जस्स होति ॥१६॥  
 ( वल्लीमपि संहितां भापमाणः,  
 न तत्करो भवति नरः प्रमत्तः ।  
 गोप इव गा गणयन् परेषां,  
 न भागवान् श्रामण्यस्य भवति ॥१९॥

अनुवाद—चाहे कितनी ही संहिताओं ( = धर्मग्रंथों ) का उच्चारण करे,  
 किन्तु प्रमादी बन ( जो ) नर उसके ( अनुसार )  
 ( आचरण ) करनेवाला नहीं होता ; ( वह ) दूसरेकी  
 गायोंको गिननेवाले ग्वालेकी भाँति श्रमणपन ( = संन्यासी-  
 पन ) का भागी नहीं होता ।<sup>१</sup>

२०-अप्पमि चे संहितं भासमानो ,  
 धम्मस्स होति अनुधम्मचारी ।  
 रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं ,  
 सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो ।  
 अनुपादियानो इध वा दुरं वा ,  
 स भागवा सामञ्जस्स होति ॥२०॥

<sup>१</sup> संहित ।

( अल्पामपि संहितां भाषमाणो  
 धर्मस्य भवत्यनुधर्मचारी ।  
 रागं च द्वेषं च प्रहाय मोहं  
 सम्यक्प्रजानन्सुविमुक्तचित्तः ।  
 अनुपादान इह वाऽमुत्र वा,  
 स भागवान् श्रामण्यस्य भवति ॥२०॥ )

अनुवाद—चाहे अल्पमात्र ही संहिताका भाषण करे, किन्तु यदि वह धर्मके अनुसार आचरण करनेवाला हो, राग, द्वेष, और मोहको त्यागकर, अच्छी प्रकार सचेत और अच्छी प्रकार मुक्तचित्त हो, यहाँ और वहाँ ( दोनों जगह ) बटोरनेवाला न हो; ( तो ) वह श्रमणपनका भागी होता है ।

?—यमकवर्ग समाप्त

## २—अप्पमादवग्गो

कौशाम्बी ( घोषिताराम )

मामावती ( रानी )

२१—अप्पमादो अमत्त-पदं पमादो मच्चुनो पदं ।

अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मत्ता ॥१॥

( अप्रमादोऽमृतपदं प्रमादो मृत्योः पदम् ।

अप्रमत्ता न म्रियन्ते ये प्रमत्ता यथा मृताः ॥१॥ )

२२—एतं विसेसतो जत्त्वा अप्पमादमिह पण्डिता ।

अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥२॥

( एवं विशेषतो ज्ञात्वाऽप्रमादे, पण्डिताः ।

अप्रमादे प्रमोदन्त आर्याणां गोचरे रताः ॥२॥ )

२३—ते भायिनो साततिका निच्चं दद्ध-परक्कमा ।

फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥३॥

( ते ध्यायिनः साततिका निर्य्यं दृढपराक्रमाः ।

स्पृशन्ति धीरा निर्वाणं योगक्षेमं अनुत्तरम् ॥३॥ )

अनुवाद—प्रमाद (=आलस्य) न करना अमृतपद है, और प्रमाद (करना) मृत्युपद । अप्रमादी (वैसे) नहीं मरते, जैसे कि प्रमादी मरते हैं । पंडित लोग अप्रमादके विषयमें इस प्रकार विशेषतः जान, आयकि आचरणमें रत हो, अप्रमादमें प्रमुदित होते हैं । ( जो ) वह निरन्तर ध्यानरत निश्च हृद पराक्रमी हैं, वह धीर अनुपम योग-क्षेम ( आनन्द मंगल ) वाले निर्वाणको प्राप्त करते हैं ।

राजगृह ( वेणुवन )

कुम्भघोसक

२४—उट्ठानवतो सतिमतो

सु चिकम्मस्स निसम्मकारिणो ।

सञ्जतस्स च धम्मजीविनो

अप्प मत्तस्स यसोऽभिवद्दति ॥४॥

( उत्थानवतः स्मृतिमतः शुचिकर्मणो निशम्य-कारिणः ।

संयतरय च धर्मजीविनोऽप्रमत्तस्य यशोभिवर्द्धते ॥४॥ )

अनुवाद—( जो ) उद्योगी, सचेत, शुचि कर्मवाला, तथा सोचकर काम करनेवाला है, और संयत, धर्मानुसार जीविकावाला एव अप्रमादी है, ( उसका ) यश बढ़ता है ।

राजगृह ( वेणुवन )

चुल्लपन्थक ( थेर )

२५—उट्ठानेन'प्पमादेन सञ्जमेन दमेन च ।

दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥५॥

( उत्थानेनाऽप्रमादेन संयमेन दमेन च ।

द्वीपं कुर्यात् मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥५॥ )



अनुवाद—मेधावी ( पुरुष ) उद्योग, अप्रमाद, संयम, और दम द्वारा  
( अपने लिये ऐसा ) द्वीप बनावे, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके।

जेतवन

बालनक्खतपुठ ( होली )

२६—पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना ।

अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं 'व रक्खति ॥६॥

( प्रमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुर्मेधसो जनाः ।

अप्रमादं च मेधावी धनं श्रेष्ठमिव रक्षति ॥६॥ )

अनुवाद—मूर्ख दुर्मेध जन प्रमादमे लगते हैं; मेधावी श्रेष्ठ धनकी  
भोति अप्रमादकी रक्षा करता है।

२७—मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्धवं ।

अप्पमत्तो हि भायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥७॥

( मा प्रमादमनुयुञ्जीत मा कामरतिसंस्तवम् ।

अप्रमत्तो हि ध्यायन् प्राप्नोति विपुलं सुखम् ॥७॥ )

अनुवाद—मन प्रमादमे फँसो, मन काममे रत होओ, मन काम  
रतिमे लिस हो। प्रमादरहित ( पुरुष ) ध्यान करते महान्  
सुखको प्राप्त होता है।

जेतवन

महाकस्मप ( थेर )

२८—पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो ।

पञ्जापासादमारुह असोको सोकिणि पजं ।

पब्बतट्ठो 'व भूमट्ठे धीरो बाले अव्वेक्खति ॥८॥

( प्रमादमप्रमादेन यदा नुदति पण्डितः ।  
 प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोकः शोकिनीं प्रजाम् ।  
 पर्वतस्थ इव भूमिस्थान् धीरो बालान् अवेक्षते ॥८॥

अनुवाद—पंडित जब अप्रमादसे प्रमादको हटाता है, तो निःशोक हो शोकाकुल प्रजाको, प्रज्ञारूपी प्रासादपर चढ़कर—  
 जैसे पर्वतपर खड़ा ( पुरुष ) भूमिपर स्थित ( वस्तु )  
 को देखता है—( वैसे ही ) धीर ( पुरुष ) अज्ञानियोको  
 ( देखता है ) ।

जेतवन

दो मित्र मिथु

२६—अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो ।  
 अबलस्सं 'व सीघस्सो हित्वा याति मुमेधसो ॥६॥  
 ( अप्रमत्तः प्रमत्तेषु सुप्तेषु बहुजागरः ।  
 अबलाश्चमिच शीघ्राश्चो हित्वा यानि सुमेधाः ॥९॥

अनुवाद—प्रमादियोंके बीचमें अप्रमादी, सोतोंके बीचमें बहुत जागनेवाला, अच्छी बुद्धिवाला ( पुरुष )—जैसे निर्वल घोड़ेको ( पीछे ) छोड़ शीघ्रगामी घोड़ा ( आगे ) चला जाता है—  
 ( वैसे ही जाता है ) ।

वैशाली ( कूटागार )

महाली

३०—अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो ।  
 अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥१०॥  
 ( अप्रमादेन मघवा देवानां श्रेष्ठतां गतः ।  
 अप्रमादं प्रशंसन्ति प्रमादो गर्हितः सदा ॥१०॥ )

अनुवाद—अप्रमाद (=आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देव-  
ताओंमें श्रेष्ठ बना । अप्रमादकी प्रशंसा करते हैं, और  
प्रमादकी सदा निन्दा होती है ।

जेतवन

कोई भिक्षु

३१—अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।

सज्जोजनं अणुं थूलं डहं अग्गीव गच्छति ॥११॥

( अप्रमादरतो भिक्षुः प्रमादे भयदर्शी वा ।

संयोजनं अणुं स्थूलं दहन् अग्निरिव गच्छति ॥११॥ )

अनुवाद—( जो ) भिक्षु अप्रमादमें रत है, या प्रमादसे भय खाने-  
वाला ( है ), ( वह ), आगकी भाँति छोटे मोटे बंधनोंको  
जलाते हुये जाता है ।

जेतवन

( निगम-वासी ) तिस्स ( थेर )

३२—अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।

अभब्बो परिहाणाय निब्बाणस्सेव सन्तिके ॥१२॥

( अप्रमादरतो भिक्षुः प्रमादे भयदर्शी वा ।

अभव्यः परिहाणाय निर्वाणस्यैव अन्तिके ॥१२॥ )

अनुवाद—( जो ) भिक्षु अप्रमादमें रत है, या प्रमादमें भय खाने-  
वाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, ( वह ) निर्वाण-  
के समीप है ।

२—अप्पमादवर्ग समाप्त

## ३—चित्तवग्गो

चालिय पर्वत

मेघिय ( थेर )

३३—फन्दनं चपलं चित्तं दूरक्ष्यं दुन्निवार्यं ।

उजुं करोति मेधावी उसुकारो'व तेजनं ॥ १ ॥

( स्पन्दनं चपलं चित्तं दूरक्ष्यं दुन्निवार्यम् ।

ऋजुं करोति मेधावी उपकार इव तेजनम् ॥ १ ॥ )

अनुवाद—( इमं ) चंचल, चपल, दुर्-रक्ष्य, दुर्-निवार्य चित्तको मेधावी  
( पुरुष, उसी प्रकार ) सीधा करता है, जैसे वाण बनाने-  
वाला वाणको ।

३४—वारिजो'व थले खित्तो ओकमोक्त उम्भतो ।

परिस्पन्दति'दं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ॥ २ ॥

( वारिजं इव स्थले क्षिप्तं उदकौकत उद्भूतम् ।

परिस्पन्दत इदं चित्तं मारधेयं प्रहानुम् ॥ २ ॥ )

अनुवाद—जैसे जलाशयसे निकालकर स्थलपर फेंक दी गई मछली  
(=वारिज ) तडफडाती है, ( वैसे ही ) मार (=राग,

द्वेष, मोह )के फन्देमे निकलनेके लिए यह चित्त  
( तडफडाता है ) ।

श्रावस्ती

कोई

३५—दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थ कामनिपातिनो ।

चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥ ३ ॥

( दुर्निग्रहस्य लघुनो यत्र-काम-निपातिनः ।

चित्तस्य दमनं साधु, चित्तं दान्तं सुखावहम् ॥ ३ ॥ )

अनुवाद—( जो ) कठिनाईसे निग्रह योग्य, शीघ्रगामी, जहाँ  
चाहता है वहाँ चला जानेवाला है; ( ऐसे ) चित्तका दमन  
करना उत्तम है; दमन किया गया चित्त सुखप्रद होता है ।

श्रावस्ती

कोई उत्कण्ठित मिथु

३६—सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थ कामनिपातिनं ।

चित्तं रक्खेय्य मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥ ४ ॥

( सुदुर्दृशं सुनिपुणं यत्र-कामनिपाति ।

चित्तं रक्षेत् मेधावी, चित्तं गुप्तं सुखावहम् ॥ ४ ॥ )

अनुवाद—कठिनाईमे जानने योग्य, अत्यन्त चालाक, जहाँ चाहे  
वहाँ ले जानेवाले चित्तकी, बुद्धिमान् रक्षा करे; सुर-  
क्षित चित्त सुखप्रद होता है ।

श्रावस्ती

सधराविखत ( धेर )

३७—दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं ।

ये चित्तं सज्जमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥ ५ ॥

( दूग्गमं एकचरं अशरीरं गुहाशयम् ।

ये चित्तं संयंस्यन्ति मुच्यन्ते मारबन्धनात् ॥ ५ ॥ )

अनुवाद—दूरगामी, अकेला विचरनेवाले, निराकार, गुहाशायी  
( इस ) चित्तका, जो समय करेंगे, वही मारके बन्धनमें  
मुक्त होंगे ।

श्रावस्ता

चित्तहत्थ ( थेर )

३८—अनक्कठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।

परिप्लवपसाढस्स पज्जा न परिपूरति ॥ ६ ॥

( अनवस्थितचित्तस्य सद्धर्म्मं अविजानतः ।

परिप्लवप्रसादस्य प्रज्ञा न परिपूर्यते ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—जिसका चित्त अवस्थित नहीं, जो सच्चे धर्मको नहीं जानता,  
जिसका ( चित्त ) प्रसन्नताहीन है, उसे प्रज्ञा (=परम  
ज्ञान ) नहीं मिल सकता ।

३९—अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो ।

पुञ्जपापपहीणस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ७ ॥

( अनवस्तुतचित्तस्य अनन्वाहतचेतसः ।

पुण्यपापप्रहीणस्य नास्ति जाग्रतो भयम् ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—जिसका चित्त मलरहित है, जिसका मन अकम्प्य है, जो  
पाप-पुण्य-विहीन है, उस सजग रहनेवाले ( पुरुष ) केलिये  
भय नहीं ।

श्रावस्ती

पाँच सौ विषयक भिक्षु

४०—कुम्भोपमं कायमिमं विदित्वा  
 नगरूपमं चित्तमिदं उपेत्या ।  
 योधेय मारं पञ्चायुधेन  
 जितं च रक्षेत् अनिवेशनो सिया ॥ ८ ॥

( कुम्भोपमं कायमिमं विदित्वा  
 नगरूपमं चित्तमिदं स्थापयित्वा ।  
 युध्येत मारं प्रज्ञायुधेन जितं  
 च रक्षेत् अनिवेशनः स्यात् ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—इस शरीरको घड़ेके समान ( भगुर ) जान, इस चित्तको  
 गढ़ (=नगर)के, समान कायम कर, प्रज्ञारूपी हथियारसे  
 मारसे युद्ध करे । जोतनेके बाद ( अपनी ) रक्षा करे,  
 ( तथा ) आसक्तिरहित होवे ।

श्रावस्ती

पूतिगत्त तिस्र ( थेर )

४१—अचिरं वत'यं कायो पठवि अधिसेस्सति ।  
 क्षुद्रो अपेतविज्जाणो निरर्थं 'व कलिङ्गरं ॥ ९ ॥  
 ( अचिरं वतायं कायः पृथिवीं अधिशेष्यते ।  
 क्षुद्रोऽपेतविज्ञानो निरर्थं इव कलिङ्गरम् ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित हो निरर्थक  
 काठकी भाँति पृथिवीपर पड़ रहेगा ।

कोसल देश

नन्द ( गोप )

४२—दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं ।

मिच्छापण्हितं चित्तं पापियो'नं ततो करे ॥१०॥

( छिट् द्विषं यत् कुर्यात् वैरी वा पुनः वैरिणम् ।

मिथ्याप्रणिहितं चित्तं पापोयांसं एनं ततः कुर्यात् ॥१०॥ )

अनुवाद—जितनी ( हानि ) शत्रु शत्रुकी, और वैरी वैरीकी करता है, झूठे ( मार्गपर ) लगा चित्त उससे अधिक बुराई करता है ।

कोसल देश

सोरथ्य ( धेर )

४३—न तं माता पिता कयिरा अज्जे चापि च जात्तका ।

सम्मापण्हितं चित्तं सेय्यसो'नं ततो करे ॥११॥

( न तत् मातापितरौ कुर्यातां अन्ये चापि च ज्ञातिकाः ।

सम्यक्प्रणिहितं चित्तं श्रेयांसं एनं ततः कुर्यात् ॥११॥

अनुवाद—जितनी ( भलाई ) न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई-बन्धु; उससे ( अधिक ) भलाई ठीक ( मार्गपर ) लगा चित्त करता है ।

३—चित्तवर्ग समाप्त



## ४—पुष्पवग्गो

श्रावस्ती

पाँच सौ भिक्षु

४४—को इमं पठवि विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।

को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुष्पमिव प्पचेस्सति ॥ १ ॥

( क इमां पृथिवीं विजेप्यते यमलोकं च इमं सदेवकम् ।

को धर्मपदं सुदेशितं कुशलः पुष्पमिव प्रचेप्यति ॥ १ ॥ )

अनुवाद—देवताओं सहित उस यमलोक और इस पृथिवीको कौन विजय करेगा ; सुन्दर प्रकारसे उपदिष्ट धर्मके पदोंको कौन चतुर ( पुरुष ) पुष्पकी भाँति चयन करेगा ?

४५—सेखो पठवि विजेस्सति यमलोकञ्च इदं सदेवकं ।

सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुष्पमिव प्पचेस्सति ॥ २ ॥

( शैक्षो पृथिवीं विजेप्यते यमलोकं च इमं सदेवकम् ।

शैक्षो धर्मपदं सुदेशितं कुशलः पुष्पमिव प्रचेप्यति ॥ २ ॥ )

अनुवाद—शैक्ष<sup>१</sup> देवताओं सहित इस यमलोक और पृथिवीको विजय करेगा । चतुर शैक्ष सुन्दर प्रकारसे उपदिष्ट धर्मके पदोंको पुष्पकी भाँति चयन करेगा ।

श्रावस्ती

मरीचि ( कम्मट्ठानिक थेर )

४६—फेणूपमं कायमिमं विदित्वा  
मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो ;  
छेत्त्वान् मारस्य पुप्फकाणि  
अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥ ३ ॥

( फेणूपमं कायमिमं विदित्वा  
मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानः ।  
छित्त्वा मारस्य पुष्पकाणि  
अदर्शनं मृत्युराजस्य गच्छेत् ॥ ३ ॥ )

अनुवाद—इस कायाको फेनके समान जान, या ( मर-) मरीचिका के समान मान, फन्देको तोड़कर, यमराजको फिर न देखनेवाले बनो ।

श्रावस्ती

विदूढभ

४७—पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरम् ।  
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चू आदाय गच्छति ॥ ४ ॥

<sup>१</sup> निर्वाणके मार्गपर जो इस प्रकार आरूढ़ हो गये हैं, कि फिर उनका उससे पतन नहीं हो सकता, ऐसे पुरुषको शैक्ष कहते हैं । उनके तीन भेद हैं—  
स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी ।

( पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।

सुप्तं ग्रामं महोद्य इव मृत्युरादाय गच्छति ॥ ४ ॥

अनुवाद—( राग आदिके ) फूलोंको चुननेवाले आसक्तियुक्त मनुष्य-  
को मृत्यु ( वैसे ही ) पकड़ ले जाती है, जैसे सोये गाँवको  
बड़ी बाढ़ ।

श्रावस्ती

पतिपूजिका

४८—पुष्पानि ह्येव पचिनन्तं व्यासक्तमनसं नरं ।

अतित्तं येव कामेषु अन्तको कुरुते वसं ॥ ५ ॥

( पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम्

अतृप्तं एव कामेषु अन्तकः कुरुते वशम् ॥ ५ ॥ )

अनुवाद—( राग आदि ) फूलोंको चुनते आसक्तियुक्त पुरुषको, ( जब कि  
अभी उसने ) कामोंमें तृप्ति नहीं प्राप्त की ( तभी )  
यम ( अपने ) वशमें कर लेता है ।

श्रावस्ती

( कजूस ) कोसिय सेठ

४९—यथापि भमरो पुष्पं वण्णगन्धं अहेठयं ।

पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरं ॥ ६ ॥

( यथापि भ्रमरः पुष्पं वर्णगन्धं अग्नन् ।

पलायते रसमादाय एवं ग्रामे मुनिश्चरेत् ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—जिस प्रकार भ्रमर फूलके वर्ण और गंधको बिना हानि  
पहुँचाये, रसको लेकर चल देता है, वैसे ही गाँवमें  
मुनि विचरण करे ।

श्रावस्ती

पाठिक ( आर्जावक साधु )

५०—न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।

अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥ ७ ॥

( न परेपां विलोमानि न परेपां कृताकृतम् ।

आत्मन एव अवक्षेत कृतानि अकृतानि च ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—न दूसरोंके विरोधी ( काम ) करे, न दूसरोंके कृत-अकृत-  
के खोजमे रहे, ( आदमीको चाहिये कि वह ) अपने  
ही कृत ( = किये ) और अकृत ( = न किये ) की  
( खोज करे ) ।

श्रावस्ती

छत्तपाणि ( उपासक )

५१—यथापि रुचिरं पुष्पं वण्णवन्तं अगन्धकं ।

एवं सुभामिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥ ८ ॥

( यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवद् अगन्धकम् ।

एवं सुभाषिता वाक् अफला भवति अकुर्वतः ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—जैसे रुचिर और वर्णयुक्त ( किन्तु ) गंधरहित फूल है,  
वैसे ही ( कथनानुसार ) आचरण न करनेवालेकी सुभाषित  
वाणी भी निष्फल है ।

५२—यथापि रुचिरं पुष्पं वण्णवन्तं सगन्धकं ।

एवं सुभाषिता वाचा सफला होति कुब्बतो ॥ ९ ॥

( यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवत् सगन्धकम् ।

एवं सुभाषिता वाक् सफला भवति कुर्वतः ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—जैसे रुचिर वर्णयुक्त और गन्धसहित फूल होता है, वैसे ही ( वचनके अनुसार काम ) करनेवालेकी सुभाषित वाणी सफल होती है ।

श्रावस्ती पूर्वाराम

विशाखा ( उपामिका )

५३—यथापि पुष्परासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू ।

एवं जातेन मञ्चेन क्तब्धं कुसलं बहुं ॥ १० ॥

( यथापि पुष्पराशेः कुर्यात् मालागुणान् बहून् ।

एवं जातेन मर्त्येन कर्त्तव्यं कुशलं बहु ॥ १० ॥ )

अनुवाद—जिस प्रकार पुष्पराशिमें बहुतसी मालायें बनाये, उसी प्रकार उत्पन्न हुये प्राणीको चाहिये कि वह बहुतसे भले ( कर्मोंको ) करे ।

श्रावस्ती

आनन्द ( थेर )

५४—न पुष्पगन्धो पटिवातमेति

न चन्दनं तगरमल्लिका वा ।

सतश्च गन्धो पटिवातमेति

सञ्चा दिशा सप्पुरिसो पवाति ॥ ११ ॥

( न पुष्पगन्धः प्रतिवातमेति

न चन्दनं तगर-मल्लिके वा ।

सतां च गन्धः प्रतिवातमेति

सर्वा दिशः सत्पुरुषः प्रवाति ॥ ११ ॥ )

अनुवाद—फूलकी सुगंध हवासे उलटी ओर नहीं जाती, न चन्दन,  
तगर या चमेली ( की गंध ही वैसा करती है );  
किन्तु सज्जनोकी सुगंध हवासे उलटी ओर जाती है,  
सत्पुरुष सभी दिशाओंमें ( सुगंध ) बहाते हैं ।

५५—चन्दनं तगरं वापि उत्पलं अथ वस्त्रिकी ।  
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ १२ ॥  
( चन्दनं तगरं वापि उत्पलं अथ वार्षिकी ।  
एतेषां गन्धजातानां शीलगन्धोऽनुत्तरः ॥ १२ ॥ )

अनुवाद—चन्दन या तगर, कमल या जूही, इन सभी ( की ) सुगंधों-  
से सदाचारकी सुगंध उत्तम है ।

राजगृह ( वेणुवन )

महाकस्सप

५६—अप्पमत्तो अयं गन्धो या'यं तगरचन्दनी ।  
यो च सीलवत्तं गन्धो वाति देवेषु उत्तमो ॥ १३ ॥  
( अल्पमात्रोऽयं गन्धो योऽयं तगरचन्दनी ।  
यश्च शीलवत्तां गन्धो वाति देवेषु उत्तमः ॥ १३ ॥ )

अनुवाद—तगर और चन्दनकी जो यह गंध फैलती है, वह अल्प-  
मात्र है; और जो यह सदाचारियोंकी गंध है, ( वह ) उत्तम  
( गंध ) देवताओंमें फैलती है ।

राजगृह ( वेणुवन )

गाथिक ( थेर )

५७—तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं ।  
सम्मदञ्जाविमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥ १४ ॥

(तेषां सम्पन्नशीलानां अप्रमाद-विहाणिम् ।

सम्यग्-ज्ञा-विमुक्तानां मारो मार्गं न विन्दति ॥१४॥ )

अनुवाद—( जो ) वे सदाचारी निरालस हो विहरनेवाले, यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त ( हो गये हैं ), ( उनके ) मार्गको मार नहीं पकड़ सकता ।

जेतवन

गरुडदिन्न

५८—यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे ।

पदुमं तथ जायेथ शुचिगन्धं मनोरमं ॥१५॥

( यथा संकारधान उज्झिते महापथे ।

पद्म तत्र जायेत शुचिगन्धं मनोरमम् ॥१५॥ )

५९—एवं संकारभूतेषु अन्धभूते पृथुज्जने ।

अतिरोचति पञ्जाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥१६॥

( एवं संकारभूते अन्धभूते पृथग्जने ।

अतिरोचते पद्मया सम्यक्-संबुद्ध-आवकः ॥१६॥ )

अनुवाद—जैसे महापथपर फेंके कूड़ेके ढेरपर मनोरम, शुचिगंध, गुलाब ( =पद्म ) उत्पन्न होवे, इसी प्रकार कूड़े समान अन्धे अज्ञानों ( =पृथग्-जनों ) में सम्यक्-संबुद्ध ( =यथार्थ ज्ञानी ) का अनुगामी ( अपनी ) 'प्रज्ञासे प्रकाशमान होता है ।

४—पुष्पवर्ग समाप्त

## ५—बालवग्गो

आवस्ती ( जेतवन )

दरिद्र सेवक

६०—दीघा जाग्रतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं ।

दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥ १ ॥

( दीर्घा जाग्रतो रात्रिः दीर्घं श्रान्तस्य योजनम् ।

दीर्घा बालानां संसारः सद्धर्मं अविजानताम् ॥ १ ॥ )

अनुवाद—जगतेको रात लम्बी होती है, थकेके लिये योजन लम्बा होता है, सच्चे धर्मको न जाननेवाले मूढोंके लिये संसार ( =आयागमन ) लम्बा है ।

राजगृह

सार्द्धविहारी (=शिष्य )

६१—चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो ।

एकचरियं दळ्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥ २ ॥

( चरन् चेत् नाधिगच्छेत् श्रेयांसं सदृशं आत्मनः ।

एकचर्यां दृढं कुर्यात् नास्ति बाले सहायता ॥ २ ॥ )



अनुवाद—यदि विचरण करते अपने अनुरूप भलेमानुषको न पाये,  
तो दृढ़ताके साथ अकेला ही विचरे, मूढ़से मित्रता  
नहीं निभ सकती ।

श्रावस्ती

आनन्द ( सेठ )

६२—पुत्रा म'त्थि धनम्म'त्थि इति बालो विहञ्जति ।  
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनं ॥३॥  
( पुत्रा मे सन्ति धनं मे ऽस्ति इति बालो विहन्यते ।  
आत्मा हि आत्मनो नास्ति कुतः पुत्रः कुतो धनम् ॥३॥ )

अनुवाद—“पुत्र मेरा है”, “धन मेरा है” ऐसा ( करके ) अज्ञ  
( नर ) उत्पीडित होता है, जब आत्मा ( = शरीर ) ही  
अपना नहीं, तो कहाँसे पुत्र और धन ( अपना होगा ) ।

जेटवन

गिरहकट चोर

६३—यो बालो मञ्जती बाल्यं पण्डितो चापि तेन सो ।  
बालो च पण्डितमानी, स वे बालो'ति वुच्चति ॥४॥  
( यो बालो मन्यते बाल्यं पण्डितश्चापि तेन स ।  
बालश्च पंडितमानी स, वै बाल इत्युच्यते ॥४॥ )

अनुवाद—जो ( कि वह ) अज्ञ होकर ( अपनी ) अज्ञताको जानता  
है, इस ( अंश ) से वह पंडित ( = जानकार ) है । वस्तुतः  
अज्ञ होकर भी जो पंडित होनेका दम भरता है, वही अज्ञ  
( =बाल ) कहा जाता है ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

उदायी ( थेर )

६४—यावज्जीवमपि चे बालो पण्डितं पर्युपासति ।

न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा ॥५॥

( यावज्जीवमपि चेद् बालः पंडितं पर्युपास्ते ।

न स धर्मं विजानाति दर्वी सूपरसं यथा ॥५॥ )

अनुवाद—चाहे बाल ( = जड; अज्ञ ) जीवन भर पंडितकी सेवामें रहे ( तो भी ) वह धर्मको ( वैसे ही ) नहीं जान सकता, जैसे कि कलछी ( = दब्बी = दबली ) सूप ( = दाल आदि ) के रसको ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

भद्रवर्गीय ( भिक्षुलोग )

६५—मुहूर्त्तमपि चे विज्जू पण्डितं पर्युपासति ।

खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥६॥

( मुहूर्त्तमपि चेद् विज्ञः पंडितं पर्युपास्ते ।

क्षिप्रं धर्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥६॥ )

अनुवाद—चाहे विज्ञ ( पुरुष ) एक मुहूर्त ही पंडितकी सेवामें रहे, ( तो भी वह ) क्षीघ्र ही धर्मको जान सकता है, जैसे कि जिह्वा सूपके रसको ।

राजगृह ( वेणुवन )

सुप्पबुद्ध ( कोढ़ी )

६६—चरिन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना ।

करोन्तो पापकं कम्मं यं होति कटुकफलं ॥७॥

( चिरिन्ति बाला दुर्मेधसोऽमित्रेणैवात्मना ।

कुर्वन्तः पापकं कर्म यद् भवति कटुकफलम् ॥७॥ )

अनुवाद—पाप कर्मको—जो कि कटु फल देनेवाला होता है—करते  
दुष्ट बुद्धि अज्ञ ( जन ) अपने ही अपने शत्रु बनते हैं ।

जेतवन

कोई कस्सप

६७—न तं कम्मं कृतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।

यस्स अस्समुखो रोदं विपाकं पटिसेवति ॥८॥

( न तत् कर्म कृतं साधु यत् कृत्वाऽनुतप्यते ।

यस्याश्रुमुखो रुदन् विपाकं प्रतिसेवते ॥८॥ )

अनुवाद—उस कामका करना ठीक नहीं, जिसे करके ( पीछे )  
अनुताप करना पड़े, और जिसके फलको अश्रुमुख रोते  
भोगना पड़े ।

( वेणुवन )

सुमन ( माली )

६८—तच्च कम्मं कृतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति ।

यस्स पत्तीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति ॥९॥

( तच्च कर्म कृतं साधु यत् कृत्वा नानुतप्यते ।

यस्य प्रतीतः सुमना विपाकं प्रतिसेवते ॥९॥ )

अनुवाद—उसी कामका करना ठीक है, जिसे करके अनुताप करना  
( = पछताना ) न पड़े, और जिसके फलको प्रसन्न मनसे  
भोग करे ।

जेतवन

उप्पलवण्णा ( धेरी )

६९—मधू'व मञ्जति बालो याव पापं न पच्चति ।

यदा च पच्चती पापं अथ दुक्खं निगच्छति ॥ १० ॥

( मध्विव मन्यते बालो यावत् पापं न पच्यते ।  
यदा च पच्यते पापं अथ दुःखं निगच्छति ॥१०॥ )

अनुवाद—अज्ञ ( जन ) जब तक पापका परिपाक नहीं होता, तब तक उसे मधुके समान जानता है । जब पापका परिपाक होता है, तो दुखी होता है ।

राजगृह ( वेणुवन )

जम्बुक ( आजीवक साधु )

७०—मासे मासे कुसुमेन बालो मुञ्जेथ भोजनं ।  
न सो संखतधम्मानं कलं अग्रघति सोलसि ॥११॥  
( मासे मासे कुशाग्रेण बालो भुंजीत भोजनम् ।  
न स संख्यातधर्माणां कलामर्हति षोडशीम् ॥११॥ )

अनुवाद—यदि अज्ञ ( पुरुष ) कुशकी नोकसे महीने महीनेपर खाना खाये, तो भी धर्मके जानकारोंके सोलहवें भागके भी बराबर ( वह वृत्त ) नहीं हो सकता ।

राजगृह ( वेणुवन )

अहिपेत

७१—न हि पापं कृतं कम्मं सज्जु खोरं 'व मुच्चति ।  
उहन्तं बालमन्वेति भस्माच्छन्नो 'व पावको ॥१२॥  
( नहि पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुंचति ।  
दहन् बालमन्वेति भस्माच्छन्न इव पावकः ॥१२॥ )

अनुवाद—ताजे दूधकी भोंति किया पाप कर्म, ( तुरन्त ) विकार नहीं लाता, वह भस्ममे ढँकी आगकी भोंति दग्ध करता अज्ञजनका पीछा करता है ।

राजगृह ( वेणुवन )

सङ्कट ( पेत )

७२—यावदेव अनत्याय जतं बालस्स जायति ।

हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्स विपातयं ॥१३॥

( यावदेव अनर्थाय जतं बालस्य जायते ।

हन्ति बालस्य शुक्कांशं मूर्धानमस्य विपातयन् ॥१३॥ )

अनुवाद—मूढ (=बाल ) का जितना भी ज्ञान है, ( वह उसके )  
अनर्थके लिये होता है । वह उसकी मूर्धा (=शिर=प्रज्ञा )  
को गिराकर उसके शुक्ल (=धवल=शुद्ध ) अंशका विनाश  
करता है ।

जेतवन

सुधम्म ( धेर )

७३—असतं भावनमिच्छेय्य पुरस्कारश्च भिक्खुसु ।

आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥१४॥

( असद् भावनमिच्छेत् पुरस्कारं च भिक्षुषु ।

आवासेषु चैश्वर्यं पूजा परकुलेषु च ॥१४॥ )

७४—ममेव कतमञ्जन्तु गिही पञ्चजिता उभो ।

ममेवातिवसा अस्सु किञ्चाकिञ्चेसु किस्मिचि ।

इति बालस्स लङ्कप्पो इच्छा मानो च बड्ढति ॥१५॥

( ममेव कृतं मन्द्यतां गृहि-प्रव्रजितावुभौ ।

ममेवातिवशाः स्यातां कृत्याकृत्येषु केषु चित् ।

इति बालस्य संकल्प इच्छा मानश्च बर्द्धते ॥१५॥ )

अनुवाद—अप्रस्तुत वस्तुकी चाह करता है, भिक्षुओंमें बड़ा बनना

( चाहता है ), मठो ( और निवासों ) में स्वामीपन  
(=ऐश्वर्य ) और दूसरे कुलोंमें पूजा ( चाहता है ) । गृहस्थ  
और संन्यासी दोनों मेरे ही कियेको मानें, किसी भी कृत्य-  
अकृत्यमें मेरे ही वशवर्ती हो—ऐसा मूढ़का संकल्प होता  
है, ( जिससे उसकी ) इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं ।

श्रावस्ती ( जेतवन )

( बनवासी ) तिस्र ( धेर )

७५—अञ्जा हि लाभोपनिप्ता अञ्जा निब्बान-गामिनी ।

एवमेतं अभिञ्जाय भिक्खू बुद्धस्स सावको ॥

सत्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुवृहये ॥ १६ ॥

( अन्या हि लाभोपनिपद् अन्या निर्वाणगामिनी ।

एवमेतद् अभिज्ञाय भिक्षुर्वुद्धस्य श्रावकः ।

सत्कारं नाभिनन्देत् विवेकमनुवृहयेत् ॥ १६ ॥ )

अनुवाद—लाभका रास्ता दूसरा है, और निर्वाणको लेजानेवाला  
दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्धका अनुगामी भिक्षु  
सत्कारका अभिनन्दन न करे, और विवेक (=एकान्तचर्या)  
को बढ़ावे ।

५—बालवर्ग समाप्त

## ६—पण्डितवग्गो

जेतवन

राध ( थेर )

- ७६—निधीनं'व पवत्तारं यं पस्से वज्ज-दस्सिनं ।  
निग्गय्हवादिं मेधावि तादिसं पण्डितं भजे ।  
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥ १ ॥  
( निधीनामिव प्रवक्तारं यं पश्येत् वर्ज्यदर्शिनम् ।  
निगृह्यवादिनं, मेधाविनं तादृशं पंडितं भजेत् ।  
तादृशं भजमानस्य श्रेयो भवति न पापीयः ॥ १ ॥ )
- अनुवाद—( भूमिमं गुप्तं ) निधियोके बतलानेवालेकी तरह, बुराईको दिखलानेवाले ऐसे संयमवादी, मेधावी पंडितकी सेवा करे । ऐसेके सेवन करनेवालेका कल्याण होता है, अमंगल नहीं ( होता ) ।

जेतवन

अस्सजी, पुनव्वसु

- ७७—ओवदेय्यानुसासेय्य असम्भा च निवारये ।  
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥ २ ॥

( अववदेदनुशिष्याद् असभ्याच्च निवारयेत् ।  
सतां हि स प्रियो भवति असतां भवत्यप्रियः ॥ २ ॥ )

अनुवाद—( जो ) सदुपदेश देता है, अनुशासन करता है, नीच कर्म-  
से निवारण करता है, वह सत्पुरुषोंको प्रिय होता है, और  
असत्पुरुषोंको अप्रिय ।

जेतवन

छन्न ( थेर )

७८—न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे ।  
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥ ३ ॥  
( न भजेत् पापानि मित्राणि न भजेत् पुरुषाश्रमान् ।  
भजेत् मित्राणि कल्याणानि भजेत् पुरुषानुत्तमान् ॥३॥

अनुवाद—दुष्ट मित्रोंका सेवन न करे, न अधम पुरुषोंका सेवन करे ।  
अच्छे मित्रोंका सेवन करे, उत्तम पुरुषोंका सेवन करे ।

जेतवन

महाकप्पिन ( थेर )

७९—धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा ।  
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥ ४ ॥  
( धर्मपीतोः सुखं शेते विप्रसन्नेन चेतसा ।  
आर्यप्रवेदिते धर्मे सदा रमते पंडितः ॥४॥ )

अनुवाद—धर्म(-रस )का पान करनेवाला प्रसन्न-चित्तहो सुखपूर्वक  
सोता है; पंडित ( जन ) आर्योंके जतलाये धर्ममें सदा रमण  
करते हैं ।



जेतवन

पण्डित सामणे

८०—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका

उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।

दारुं नमयन्ति तच्छका

अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥५॥

( उदकं हि नयन्ति नेतृका इषुकारा नमयन्ति तेजनम् ।

दारु नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ॥५॥ )

अनुवाद—नहरवाले पानीको लेजाते हैं, वाण धनानेवाले वाणको ठीक करते हैं, बड़ई लकड़ीको ठीक करते हैं; और पंडित ( जन ) अपना दमन करते हैं ।

जेतवन

भदिय ( थेर )

८१—सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।

एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥६॥

( शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।

एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ॥६॥ )

अनुवाद—जैसे ठोस पहाड़ हवासे कंपायमान नहीं होता; ऐसे ही पंडित निन्दा और प्रशंसासे विचलित नहीं होते ।

जेतवन

काण-माता

८२—यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो ।

एवं धम्मानी सुत्त्वान विप्पसोदन्ति पण्डिता ॥७॥

( यथापि हृदो गम्भीरो विप्रसन्नोऽनाविलः ।  
एवं धर्मान् श्रुत्वा विप्रसीदन्ति पण्डिताः ॥७॥ )

अनुवाद—धर्मोंको सुनकर पण्डित ( जन ) अथाह, स्वच्छ, निर्मल  
सरोवरकी भाँति स्वच्छ ( सन्तुष्ट ) होते हैं ।

जेतवन

पाँच सौ भिक्षु

८३—सम्बन्ध वे सत्पुरुषा व्रजन्ति  
न कामकामा लपयन्ति सन्तो ।

सुखेन कुट्ठा अथवा दुःखेन  
न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ॥८॥

( सर्वत्र वे सत्पुरुषा व्रजन्ति न कामकामा लपन्ति सन्तः ।  
सुखेन स्पृष्टा अथवा दुःखेन नोच्चावचं पण्डिता दर्शयन्ति ॥८॥

अनुवाद—सत्पुरुष सभी जगह जाते हैं, ( वह ) भोगोंके लिए बात  
नहीं चलाते; सुख मिले या दुःख, पण्डित ( जन ) विकार  
नहीं प्रदर्शन करते ।

जेतवन

धम्मिक ( थेर )

८४—न अत्तहेतू न परस्स हेतु  
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं ।

न इच्छेय्य अधम्ममेन समिद्धिमत्तनो  
सीलवा पज्जवा धम्मिको सिया ॥९॥

( नात्महेतोः न परस्य हेतोः

न पुत्रमिच्छेत् न धनं न राष्ट्रम् ।

नेच्छेद् अधर्मेण समृद्धिमात्मनः

स शीलवान् प्रज्ञावान् धार्मिकः स्यात् ॥९॥ )

अनुवाद—जो अपने लिए या दूसरेके लिये पुत्र, धन, और राज्य नहीं चाहते, न अधर्मसे अपनी उन्नति चाहते हैं; वही सदाचारी ( शीलवान् ) प्रज्ञावान् और धार्मिक हैं ।

जेतवन

धर्मश्रवण

८५—अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।

अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥ १० ॥

( अल्पकास्ते मनुष्येषु ये जनाः पारगामिनः ।

अथेमा इतराः प्रजाः तीरमेवानुधावन्ति ॥१०॥ )

८६—ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवर्त्तिनो ।

ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ॥ ११ ॥

( ये च खलु सम्यगाख्याते धर्मे धर्मानुवर्त्तिनः ।

ते जनाः पारमेष्यन्ति मृत्युधेयं सुदुस्तरम् ॥११॥ )

अनुवाद—मनुष्योंमें पार जानेवाले जन विरले ही हैं, यह दूसरे लोग तो तीरे ही तीरे दौड़नेवाले हैं । जो सुव्याख्यात धर्म-का अनुगमन करते हैं, वह मृत्युगृहीत अतिदुस्तर ( संसार-सागर ) को पार करेंगे ।

जेतवन

पाँच सौ नवागत भिक्षु

८७—करहं धम्मं विप्रहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो ।

ओका अनोकं आगम्य विवेके गत्य दूरमं ॥१२॥

( कृष्णं धर्मं विप्रहाय शुक्लं भावेत् पण्डितः ।

ओकात् अनोकं आगम्य विवेके यत्र दूरमम् ॥१२॥ )

८८—तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो ।

परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ॥१३॥

( तत्राभिरतिमिच्छेत् हित्वा कामान् अकिञ्चनः ।

पर्यवदापेत् आत्मानं चित्तक्लेशैः पण्डितः ॥१३॥ )

अनुवाद—काले धर्म (=पाप) को छोड़कर, पण्डित ( जन ) शुक्क  
(-धर्म) का आचरण करें । घरसे बेघर हो दूर जा विवेक  
(=एकान्त) का सेवन करे । भोगोंको छोड़, सर्वस्वत्यागी  
हो वहीं रत रहनेकी इच्छा करे । पण्डित ( जन ) चित्त-  
के मलोंसे अपनेको परिशुद्ध करें ।

८९—येसं सम्बोधि-अङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं ।

आदान-पटिनिस्सगगे अनुपादाय ये रता ।

खीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्बुता ॥१४॥

( येषां सम्बोध्यंगेषु सम्यक् चित्तं सुभावितम् ।

आदानप्रतिनिःसर्गं अनुपादाय ये रताः ।

क्षीणास्त्रया ज्योतिष्मन्तस्ते लोके परिनिर्धृताः ॥१४॥ )

अनुवाद—संबोधि(=परम ज्ञान) के अंगों(=संबोध्यंगों)में जिनका  
चित्त भली प्रकार परिभावित (=संस्कृत, ) हो गया है;

जो परिग्रहके परित्यागपूर्वक अपरिग्रहमें रत हैं । ऐसे, चित्तके मलोंसे निर्मुक्त (=क्षीणश्रव ), धृतिमान् ( पुरुष ) लोकमें निर्वाणको प्राप्त हो गये है ।

६-परिडत्तवर्ग सनात

—

## ७—अर्हन्तवग्गो

राजगृह ( जीवकका आम्रवन )

जीवक

६०—गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।

सब्बगन्थप्पहोणस्य परिदाहो न विज्जति ॥१॥

( गताध्वनो विरोकस्य विप्रमुक्तस्य सर्वथा ।

सर्वग्रन्थग्रहोणस्य परिदाहो न विद्यते ॥१॥ )

अनुवाद—जिसका मार्ग(-गमन) समाप्त हो चुका है, जो शोक-  
रहित तथा सर्वथा मुक्त है; जिसकी सभी ग्रंथियाँ क्षोण हो  
गई हैं; उसके लिये सन्ताप नहीं है ।

राजगृह ( वेणुवन )

महाकस्सप

६१—उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।

हंसा 'व पल्लं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥२॥

( उद्युंजते स्मृतिमन्तो न निकेते रमन्ते ते ।

हंसा इव पल्लं हित्वा ओकमोकं जहति ते ॥२॥ )

अनुवाद—सचेत हो वह उद्योग करते हैं, ( गृह-)सुख में रमण नहीं करते, हंस जैसे क्षुद्र जलाशयको छोड़कर चले जाते हैं, ( वैसे ही वह अर्हत् ) गृहको छोड़ जाते हैं ।

जेतवन

बेलट्टि सीस

६२—येसं सन्निचयो नत्थि ये परिज्जातभोजना ।

सुज्जतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।

आकासे 'व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्तया ॥३॥

( येषां सन्निचयो नास्ति ये परिज्ञातभोजनाः ।

शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः ।

आकाश इव शकुन्तानां गतिः तेषां दुरन्वया ॥३॥ )

अनुवाद—जो ( वस्तुओंका ) सचय नहीं करते, जिनका भोजन नियत है, शून्यता-स्वरूप तथा कारण-रहित मोक्ष (=निर्वाण) जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी गति (=गन्तव्य स्थान) आकाशमे पक्षियोंकी ( गतिकी ) भाँति अज्ञेय है ।

राजगृह ( वेणुवन )

अनुरुद्ध ( धर )

६३—यस्सा'सवा परिक्षीणा आहारे च अनिस्सितो ।

सुज्जतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।

आकासे 'व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्तयं ॥४॥

( यस्यास्रवाः परिक्षीणा आहारे च अनिःसृतः ।

शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः ।

आकाश इव शकुन्तानां पदं तस्य दुरन्वयम् ॥४॥ )

अनुवाद—जिसके आसन्न (=मल) क्षीण हो गये, जो आहारमें पर-  
तंत्र नहीं, जो शून्यता रूप० ।

श्रावस्ती ( पूर्वोराम )

महाकच्चायन

६४—यस्सिन्द्रियाणि समथं गतानि,  
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।  
पहीनमानस्स अनासवस्स,  
देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥ ५ ॥

( यस्येन्द्रियाणि शमतां गतानि  
अश्वा यथा सारथिना सुदान्ताः ।  
प्रहीणमानस्य अनास्रवस्य देवा  
अपि तस्य स्पृहयन्ति तादृशः ॥ ५ ॥ )

अनुवाद—सारथीद्वारा सुदान्त (=सुशिक्षित) अश्वोंकी भाँति  
जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया,  
( और ) जो आसन्नवरहित है, ऐसे उस ( पुरुष )की देवता  
भी स्पृहा करते हैं ।

जेतवन

सारिपुत्त ( थेर )

६५—पठवीसमो नो विरुज्झति  
इन्द्रखीलूपमो तादि सुब्बतो ।  
रहदो 'व अपेतक्रह्मो  
संसारा न भवन्ति तादिनो ॥ ६ ॥



( पृथिवीसमो न विरुध्यते इन्द्रकीलोपमस्तादृक् सुव्रतः ।

हृद इवापेतकर्ममः संसारा न भवन्ति तादृशः ॥६॥ )

अनुवाद—वैसा सुन्दर व्रतधारी इन्द्रकीलके समान ( अच्छल ) तथा पृथिवीके समान जो क्षुब्ध नहीं होता; ऐसे ( पुरुष ) ने कर्मरहित सरोवरकी भाँति संसार ( मल ) नहीं रहता ।

जेतवन

कोमम्बिभासित तिस्स ( थेर )

६६—सन्तं अस्म मनं होति सन्ता वाचा च कम्मञ्च ।

सम्पदञ्जाविमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥७॥

( शान्तं तस्य मनो भवति शान्ता वाक् च कर्म च ।

सम्यग्गाज्ञाविमुक्तस्य उपशान्तस्य तादृशः ॥७॥ )

अनुवाद—उपशान्त और यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्त हुये उस ( अहम् पुरुष ) का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शान्त होते हैं ।

जेतवन

सारिपुत्र ( थेर )

६७—अस्सद्धो अकतञ्जू च सन्धिच्छेदो च यो नरो ।

हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥८॥

( अश्रद्धोऽकृतज्ञश्च सन्धिच्छेदश्च यो नरः ।

हतावकाशां वान्ताशः स वै उत्तम पुरुषः ॥८॥ )

अनुवाद—जो ( मूढ़- ) श्रद्धारहित, अकृत (=बिना वनाये=निर्वाण )-ज्ञ, ( ससारकी ) संधिका छेदन करनेवाला, अवकाशरहित,

( विषय- ) भोगको वमनकर दिया जो नर है, वही उत्तम पुरुष है ।

जेतवन

( खदिरवनी ) रेवत ( थेर )

६८—गामे वा यदि वा'रञ्जे निन्ने वा यदि वा थले ।

यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामण्यकं ॥६॥

( ग्रामे वा यदि वाऽऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले ।

यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमी रमणीया ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—गाँवमे या जंगलमे, निम्न या ( ऊँचे ) स्थलमे जहाँ  
( कहीं ) अर्हत् ( लोग ) विहार करते हैं, वही रमणीय  
भूमि है ।

जेतवन

आरण्यक भिक्षु

६९—रमणीयानि अरञ्जानि यत्थ न रमते जनो ।

वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥ १० ॥

( रमणीयान्यारण्यानि यत्र न रमते जनः ।

वीतरागा रंस्यन्ते न ते कामगवेषिणः ॥ १० ॥ )

अनुवाद—( वह ) रमणीय बन, जहाँ ( साधारण ) जन रमण नहीं  
करते, काम( भोगों ) के पीछे न भटकनेवाले वीतराग ( वहाँ )  
रमण करेंगे ।

७—अर्हद्वर्ग समाप्त

## ८—सहस्सवग्गो

वेणुवन

तम्बदाठिक ( चोरघातक )

१००—सहस्समपि चे वाचा अनत्यपदसंहिता ।

एकं अत्यपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ १ ॥

( सहस्समपि चेद् वाचः अनर्थपदसंहिताः ।

एकमर्थपदं श्रेयो यच्छुचोपशाम्यति ॥ १ ॥ )

अनुवाद—व्यर्थके पदोंसे युक्त सहस्रों वाक्योंमें भी ( वह ) सार्थक

एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति होती है ।

जेतवन

दारुचीरिय ( धेर )

१०१—सहस्समपि च गाथा अनत्यपदसंहिता ।

एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ २ ॥

( सहस्समपि चेद् गाथा अनर्थपदसंहिताः ।

एकं गाथापदं श्रेयो यच्छुचोपशाम्यति ॥ २ ॥ )

अनुवाद—व्यर्थके पदोंसे युक्त हजार गाथाओंसे भी एक गाथापद

श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर० ।

जितवन

कुण्डलकेसां ( थेरी )

१०२—यो च गाथा सतं भासे अनत्यपदसंहिता ।

एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥

( यश्च गाथाशतं भाषेतानर्थपदसंहितम् ।

एकं धर्मपदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥ ३ ॥ )

१०३—यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने ।

एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥ ४ ॥

( यः सहस्रं सहस्रेण संग्रामे मानुषान् जयेत् ।

एकं च जयेद् आत्मानं स वै संग्रामजिदुत्तमः ॥ ४ ॥ )

अनुवाद—जो व्यर्थके पदोसे युक्त सौ गाथाये भी भाषै ( उससे )

धर्मका एक पद भी श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर ० ॥ संग्राममे

जो हजारों हजार मनुष्योंको जीत ले, ( उससे कहीं अच्छा )

एक अपनेको जीतनेवाला उत्तम संग्रामजित् है ।

जितवन

अनर्थ-पुच्छक ब्राह्मण

१०४—अत्ता ह वे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा ।

अत्तदन्तस्स पोसस्स निच्चं सञ्जतवारिनो ॥ ५ ॥

( आत्मा ह वे जितः श्रेयान् या चैयमितराः प्रजा ।

दान्तात्मनः पुरुषस्य नित्यं संयतचारिणः ॥ ५ ॥ )

१०५—नेव देवा न गन्धर्वो न मारो सह ब्रह्मना ।

जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥ ६ ॥

( नैव देवो न गन्धर्वो न मारः सह ब्रह्मणा ।

जितं अपजितं कुर्यात् तथारूपस्य जन्तोः ॥ ६ ॥

अनुवाद—इन अन्य प्रजाओंके जीतनेकी अपेक्षा अपनेको जीतना श्रेष्ठ है । अपनेको दमन करनेवाला, नित्य अपनेको संयम करनेवाला जो पुरुष है । इस प्रकारके प्राणीके जीतेको, न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा सहित मार, बेजीता कर सकते हैं ।

वेणुवन

सारिपुत्तके मामा

१०६—मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं ।

एकञ्च भावित्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।

सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ७ ॥

( मासे मासे सहस्रेण यो यजेत शतं समान ।

एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।

सैव पूजना श्रेयसी यच्चंद् धर्पशतं हुतम् ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—सहस्र(-दक्षिणा यज्ञ)से जो महीने महीने सौ वर्ष तक यजन करे, और यदि परिशुद्ध मनवाले एक ( पुरुष ) को एक मुहूर्त ही पूजे ; तो सौ वर्षके हवनसे यह पूजा ही श्रेष्ठ है ।

वेणुवन

मारिपुत्तका भांजा

१०७—यो च वस्ससतं जन्तु अग्निं परिचरे वने ।

एकं च भावित्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।

सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ८ ॥

( यश्च वर्षशतं जन्तुरग्निं परिचरेद् धने ।

एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।

सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—यदि प्राणी सौ वर्ष तक वनमे अग्निपरिचरण (=अग्नि-  
होत्र ) करे, और यदि० ।

वेणुवन

सारिपुत्तका मित्र ब्राह्मण

१०८—यं किञ्चि यिट्ठं च हुतं च लोके ,

संवच्छरं यजेथ पुञ्जपेक्खो ।

सब्रम्पि तं न चतुभागमेति ,

अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो ॥ ८ ॥

( यत् किञ्चिद् इष्टं च हुतं च लोके,

संवत्सरं यजेत पुण्यापेक्षः ।

सर्वमपि तत् न चतुर्भागमेति,

अभिवादना ऋजुगतेषु श्रेयसी ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—पुण्यकी इच्छामे जो वर्ष भर नाना प्रकारके यज्ञ और  
हवनको करे, तो भी वह सरलताको प्राप्त ( पुरुष )  
के लिये की गई अभिवादनाके चतुर्थांशसे भी बढ़कर  
नहीं है ।

अरण्यकुटी

दाषायु कुमार

१०९—अभिवादनसीलिस्स निच्चं बद्धापचायिनो ।

चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ॥ १० ॥

( अभिवादनशीलस्य नित्यं बृद्धापचायिनः ।

चत्वारो धर्मा वर्धन्ते आयुर्वर्णः सुखं बलम्\* ॥ १० ॥ )

अनुवाद—जो अभिवादन शील है, जो सदा बृद्धोंकी सेवा करनेवाला है, उसकी चार बातें ( =धर्म ) बढ़ती हैं,—आयु, वर्ण, सुख और बल ।

जेतवन

सकिञ्च (=साकृत्य ) सामणे

११०—यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।

एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स भायिनो ॥ ११ ॥

( यश्च वर्षशतं जीवेद् दुःशीलोऽसमाहितः ।

एकाहं जीवितं श्रेयः शीलवतो ध्यायितः ॥ ११ ॥ )

अनुवाद—दुराचारी और एकाग्रचित्तताविरहित (=असमाहित) के सौ वर्षके जीनेसे भी सदाचारी और ध्यानीका एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

जेतवन

कोण्डञ्ज ( थेर )

१११—यो च वस्ससतं जीवे दुप्पञ्जो असमाहितो ।

एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्जावन्तस्स भायिनो ॥ १२ ॥

( यश्च वर्षशतं जीवेद् दुष्प्रज्ञोऽसमाहितः ।

एकाहं जीवितं श्रेयः प्रज्ञावतो ध्यायिनः ॥ १२ ॥ )

\* मनुस्मृतिमें है—“अभिवादनशीलस्य नित्यं बृद्धोपसेविनः । चत्वारि संप्रवर्द्धन्ते आयुर्विधा यशो बलम् ( २।१२१ ) ।

अनुवाद—दुष्प्रज्ञ और असमाहितके सौ वर्षके जीनेसे भी प्रज्ञावान् और ध्यानीका एक दिनका जीवन श्रेष्ठ है ।

जेतवन

सप्पदास ( थेर )

११२—यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो ।

एकाहं जीवितं सेय्यो वीरियमारभतो दब्धं ॥ १३ ॥

( यश्च वर्षशतं जीवेत् कुसीदो हीनवीर्यः ।

एकाहं जीवितं श्रेयो वीर्यमारभतो दृढम् ॥ १३ ॥ )

अनुवाद—आलसी और अनुद्योगीके सौ वर्षके जीवनसे दृढ़ उद्योग करनेवालेके जीवनका एक दिन श्रेष्ठ है ।

जेतवन

पटाचारा ( थेरी )

११३—यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयव्ययं ।

एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयव्ययं ॥ १४ ॥

( यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् उदयव्ययम् ।

एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यत उदयव्ययम् ॥ १४ ॥ )

अनुवाद—( संसारमे वस्तुओंके ) उत्पत्ति और विनाशका न ख्याल करनेके सौ वर्षके जीवनसे, उत्पत्ति और विनाशका ख्याल करनेवाले जीवनका एक दिन श्रेष्ठ है ।

जेतवन

किस गोतमी

११४—यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं ।

एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं ॥ १५ ॥



( यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् अमृतं पदम् ।

एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतोऽमृतं पदम् ॥१५॥ )

अनुवाद—अमृतपद (=दुःखनिर्वाण) को न ख्याल करनेके सौ वर्षके जीवनसे, अमृतपदको देखनेवाले जीवनका एक दिन श्रेष्ठ है ।

जेतवन

बहुपुत्तिका ( धेरी )

११५—यो च वत्ससतं जीवे अपत्सं धम्ममुत्तमं ।

एकाहं जीवितं सेय्यो पत्सतो धम्ममुत्तमं ॥१६॥

( यश्च वर्षशतं जीवेदपश्यन् धर्ममुत्तमम् ।

एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतो धर्ममुत्तमम् ॥१६॥ )

अनुवाद—उत्तम धर्मको न देखनेके सौ वर्षके जीवनसे, उत्तम धर्मके देखनेवालेके जीवनका एक दिन श्रेष्ठ है ।

८—सहस्रवर्ग समाप्त

## ६—पापवग्गो

जेतवन

( चूल ) एकसाटक ( ब्राह्मण )

११६—अभित्यरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।

दन्धं हि करोतो पुञ्जं पापस्मिं रमते मना ॥ १ ॥

( अभित्त्वरेत कल्याणे पापात् चित्तं निवारयेत् ।

तन्द्रितं हि कुर्वतः पुण्यं पापे रमते मनः ॥ १ ॥ )

अनुवाद—पुण्य ( कामोंमें ) जल्दी करे, पापमें चित्तको निवारण करे,  
पुण्यको धीमी गतिसे करनेपर चित्त पापमें रत होने लगता है ।

जेतवन

सेय्यसक ( थेर )

११७—पापञ्च पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं ।

न तम्हि छन्दं कयिराय दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥ २ ॥

( पापं चेत् पुरुषः कुर्यात् न तत् कुर्यात् पुनः पुनः ।

न तस्मिं छन्दं कुर्यात्, दुःखः पापस्य उच्चयः ॥ २ ॥ )

अनुवाद—यदि पुरुष ( कभी ) पापकर डाले, तो उसे पुनः पुनः  
न करे, उसमें रत न होवे, ( क्योंकि ) पापका संचय  
दुःख ( का कारण ) होता है ।

जेतवन

लाजदेवकी कन्या

११८—पुञ्जञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं ।

तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्जस्स उच्चयो ॥३॥

( पुण्यं चेत् पुरुषः कुर्यात्, कुर्याद् एतत् पुनः पुनः ।

तस्मिं छन्दं कुर्यात् सुखः पुण्यस्य उच्चयः ॥३॥ )

अनुवाद—यदि पुरुष पुण्य करे तो, उसे पुनः पुनः करे, उसमे रत होवे,

( क्योंकि ) पुण्यका संचय सुखकर होता है ।

जेतवन

अनाथपिण्डिक ( सेठ )

११९—पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्वति ।

यदा च पच्वति पापं अथ पापानि पस्सति ॥४॥

( पापोऽपि पश्यति भद्रं यावत् पापं न पच्यते ।

यदा च पच्यते पापं अथ पापानि पश्यति ॥४॥ )

१२०—भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्वति ।

यदा च पच्वति भद्रं अथ भद्रानि पस्सति ॥५॥

( भद्रोऽपि पश्यति पापं यावद् भद्रं न पच्यते ।

यदा च पच्यते भद्रं अथ भद्राणि पश्यति ॥५॥ )

अनुवाद—पापी भी तबतक भला ही देखता है, जबतक कि पापका

विपाक नहीं होता; जब पापका विपाक होता है, तब

( उसे ) पाप दिनाई पडने लगता है । भद्र ( पुण्य

करनेवाला, पुरुष ) भी तबतक पापको देखता है 'जबतक

कि पुण्यका विपाक नहीं होने लगता; जब पुण्यका विपाक होने लगता है, तो पुण्योको देखने लगता है ।

जेतवन

असयमी ( भिक्षु )

१२१—मावमज्जेय पापस्स न मन्तं आगमिस्सति ।  
 उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।  
 बालो पूरति पापस्स थोक-थोकम्पि आचिनं ॥६॥  
 ( मा ऽ वमन्येत पापं न मां तद् आगमिष्यति ।  
 उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूर्यते ।  
 बालः पूरयति पापं स्तोत्रं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—“वह मेरे पास नहीं आयेगा” ऐसा ( सोच ) पापकी अवहेलना न करे । पानीकी वृंदके गिरनेसे घड़ा भर जाता है ( ऐसे ही ) मूर्ख थोड़ा थोड़ा संचय करते पाप-को भर लेता है ।

जेतवन

विलालपाद ( सेठ )

१२२—मावमज्जेय पुज्जस्स न मन्तं आगमिस्सति ।  
 उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।  
 धीरो पूरति पुज्जस्स थोक-थोकम्पि आचिनं ॥७॥  
 ( मा ऽ वमन्येत पुण्यं न मां तद् आगमिष्यति ।  
 उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भो ऽपि पूर्यते ।  
 धीरः पूरयति पुण्यं स्तोत्रं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—“वह मेरे पास नहीं आयेगा”—ऐसा ( सोच ) पुण्यकी अवहेलना न करे । पानी की० । धीर थोड़ा थोड़ा संचय करते पुण्यको भर लेता है ।

जेतवन

महाधन ( वणिक् )

१२३—वाणिजो 'व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो ।

विसं जीवितुकामो'व पापानि परिवज्जये ॥ ८ ॥

( वणिगिव भयं मार्गं अल्पसार्थो महाधनः ।

विषं जीवितुकाम इव पापानि परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—थोड़े काफिले और महाधनवाला बनजारा जैसे भययुक्त रास्तेको छोड़ देता है, ( अथवा ) जीनेकी इच्छावाला पुरुष जैसे विषको ( छोड़ देता है ); वैसे ही ( पुरुष ) पापों-को छोड़ दे ।

वेणुवन

कुक्कुटमित्र

१२४—पाणिमिहं चे वणो नास्स हरंय्य पाणिना विसं ।

नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो ॥ ९ ॥

( पाणौ चेद् वणो न स्याद् हरेत् पाणिना विषम् ।

नाऽवणं विषमन्वेति, नास्ति पापं अकुर्वतः ॥ ९ ॥

अनुवाद—यदि हाथमे घाव न हो, तो हाथसे विषको ले ले ( क्योंकि ) घाव (= व्रण )-रहित ( शरीरमे ) विष नहीं लगता; ( इसी प्रकार ) न करनेवालेको पाप नहीं लगता ।

जेतवन

कोक ( कुत्तका शिकारी )

१२५—यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति

सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।

तमेव बालं पच्चेति पापं,

सुए मो रजो पट्ठातं 'व खित्तो ॥ १० ॥

( योऽल्पदुष्टाय नराय दुष्यति

शुद्धाय पुरुषायाऽनङ्गणाय ।

तमेव बालं प्रन्येति पापं, सूक्ष्मो

रजः प्रतिवातमिव क्षिप्तम् ॥ १० ॥ )

अनुवाद—जो दोषरहित शुद्ध निर्मल पुरुषको दोष लगाता है, उसी अज्ञको ( उसका ) पाप लोंटकर लगाना है, ( जैसे कि ) सूक्ष्म धूलिको हवाके आनेके रुख फेकनेसे ( वह फेकनेवाले पर पड़ती है ) ।

जेतवन

( माणिकारकुलूपग ) तिस्स ( 'थर )

१२६—गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो ।

सगं सुगतिनो यन्ति, परिनिव्वन्ति अनासवा ॥ ११ ॥

( गर्भमेक उत्पद्यन्ते, निरयं पापकर्मिणः ।

स्वर्गं सुगतयो यान्ति, परिनिर्वान्त्यनासवाः ॥ ११ ॥ )

अनुवाद—कोई ( पुरुष ) गर्भमे उत्पन्न होते हैं, ( कोई ) पाप-कर्मा नरकमे ( जाते हैं ), ( कोई ) सुगतिवाले ( पुरुष ) स्वर्गको जाते हैं; ( और चित्तके ) मलोमे रहित ( पुरुष ) निर्वाणको प्राप्त होते हैं ।

जैतवन

३ भिक्षु

१२७—न अन्तलिकखे न समुद्मज्जे

न पब्बतानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेशो

यत्थट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा ॥ १२ ॥

( नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये

न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।

न विद्यते स जगति प्रदेशो

यत्रस्थितो मुच्येत पापकर्मणः ॥ १२ ॥ )

अनुवाद—न आकाशमे न समुद्रके मध्यमे न पर्वतोंके विवरमे प्रवेश  
कर—संसारमे कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहकर—पाप  
कर्मोंके ( फलये ) ( प्राणी ) बच सके ।

कपिलवस्तु ( न्यग्रोधाराम )

सुप्पबुद्ध ( शाक्य )

१२८—न अन्तलिकखे न समुद्मज्जे

न पब्बतानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेशो

यत्थट्ठितं न पप्सहेय्य मच्चू ॥ १३ ॥

( नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये

न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।

न विद्यते स जगति प्रदेशो

यत्रस्थितं न प्रसहेत मृत्युः ॥ १३ ॥ )

अनुवाद—न आकाशमे ०—जहाँ रहनेवालेको मृत्यु न सतावे ।

६—पापवर्ग समाप्त

## १०—दण्डवग्गो

जेतवन

छव्वग्गिय ( भिक्षुलोग )

१२६—सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥१॥

( सर्वे त्रस्यन्ति दण्डात् सर्वे विभ्यति मृत्योः ।

आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥१॥ )

अनुवाद—दण्डसे सभी डरते हैं, मृत्युसे सभी भय खाते हैं, अपने  
समान ( इन बातोंको ) जानकर न मारे न मारनेकी  
प्रेरणा करे ।

जेतवन

छव्वग्गिय ( भिक्षु )

१३०—सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥२॥

( सर्वे त्रस्यन्ति दण्डात् सर्वेषां जीवितं प्रियम् ।

आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥२॥ )

अनुवाद—सभी दण्डसे डरते हैं, सबको जीवन प्रिय है, ( इसे ) अपने  
समान जानकर न मारे न मारनेकी प्रेरणा करे ।



जेतवन

बहुतसे लङ्के

१३१—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिसति ।

अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥३॥

( सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिनस्ति ।

आत्मनः सुखमन्विष्य प्रेत्य स न लभते सुखम् ॥३॥ )

१३२—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिसति ।

अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥४॥

( सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिनस्ति ।

आत्मनः सुखमन्विष्य प्रेत्य स लभते सुखम् ॥४॥ )

अनुवाद—सुख चाहनेवाले प्राणियोंको, अपने सुख की चाहसे जो दण्ड से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता । सुख चाहनेवाले प्राणियोंको, अपने सुख की चाहमे जो दण्डसे नहीं मारता, वह मरकर सुखको प्राप्त होता है ।

जेतवन

कुण्डधान ( थेर )

१३३—मा वोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं ।

दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु तं ॥५॥

( मा वोचः परुषं किञ्चिद् उक्ताः प्रतिवदेयुस्त्वाम् ।

दुःखा हि संरम्भकथाः प्रतिदण्डाः स्पृशेयुस्त्वाम् ॥५॥ )

१३४—स चे नेरंसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा ।

एस पत्तोसि निब्बाणं सारम्भो ते न विज्जति ॥६॥

( स चेत् नेरयसि आत्मानं कांस्यमुपहतं यथा ।

एष प्राप्तोऽसि निर्वाणं संरम्भस्ते न विद्यते ॥६॥ )

अनुवाद—कठोर वचन न बोलो, बोलनेपर ( दूसरे भी वैसे ही )  
तुम्हें बोलेंगे, दुर्वचन दुःखदायक ( होते हैं ), ( बोलनेसे )  
बदलेमें तुम्हें दण्ड मिलेगा । टूटा कांसा जैसे निःशब्द रहता  
है, ( वैसे ) यदि तुम अपनेको ( निःशब्द रखो ), तो  
तुमने निर्वाणको पालिया, तुम्हारे लिये कलह (=हिंसा )  
नहीं रही ।

श्रावस्ती ( पूर्वोराम )

विसाखा आदि ( उपासिकायें )

१३५—यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।

एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचन्ति पाणिनं ॥७॥

( यथा दण्डेन गोपालो गाः प्राजयति गोचरम् ।

एवं जरा च मृत्युश्चायुः प्राजयतः प्राणिनाम् ॥७॥ )

अनुवाद—जैसे ग्वाला लाठीसे गायोंको चरागाहमें ले जाता है; वैसे  
ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियोंकी आयुको ले जाते हैं ।

राजगृह ( वेणुवन )

अजगर ( प्रेत )

१३६—अथ पापानि कम्मनि करं बालो न बुञ्जति ।

सेहि कम्मेहि दुस्सेधो अग्निदग्धो 'व तप्पति ॥८॥

( अथ पापानि कर्माणि कुर्वन् बालो न बुध्यते ।

स्वः कर्मभिः दुर्मैधा अग्निदग्ध इव तप्यते ॥८॥ )

अनुवाद—पाप कर्म करते वक्त मूढ़ ( पुरुष उसे ) नहीं बुझता, पीछे

दुर्बुद्धि अपने ही कर्मोंके कारण आगसे जलेकी भाँति अनुताप करता है ।

राजगृह ( वेणुवन )

महामोग्गलान ( थेर )

- १३७—यो दण्डेन अदण्डेसु आप्पदुट्ठेसु दुस्सति ।  
 दसन्नमञ्जतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥६॥  
 ( यो दण्डेनादण्डेष्वप्रदुष्टेषु दुष्यति ।  
 दशानामन्यतमं स्थानं क्षिप्रमेव निगच्छति ॥९॥ )
- १३८—वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदनं ।  
 गरुक्कं वापि आवाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ॥१०॥  
 ( वेदनां परुषां ज्यानि शरीरस्य च भेदनम् ।  
 गुरुकं वाऽप्याबाधं चित्तक्षेपं वा प्राप्नुयात् ॥१०॥ )
- १३९—राजतो वा उपस्सगं अब्भक्खानं व दारुणं ।  
 परिक्खयं व जातीनं भोगानं व पभङ्गणं ॥११॥  
 ( राजतो वीपस्सर्गमभ्याख्यानं वा दारुणम् ।  
 परिक्षयं वा ज्ञातीनां भोगानां वा प्रभंजनम् ॥११॥ )
- १४०—अथवस्स अगारानि अग्गी डहति पावको ।  
 कायस्स भेदा दुप्पज्जो निरयं सोपपज्जति ॥१२॥  
 ( अथवाऽस्यागाराण्यग्निर्दहति पावकः ।  
 कायस्य भेदाद् दुष्प्रज्ञो निरयं स उपपद्यते ॥१२॥ )
- अनुवाद—जो दण्डरहितोंको दण्डसे ( पीडित करता है ), निर्दोषोंको दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन स्थानोंमेंसे एकको प्राप्त

होता है। कडवी वेदना, हानि, अंगका भंग होना, भारी बीमारी, (या) चित्तविक्षेप (=पागल) को प्राप्त होता, है। या राजामे दण्डको (प्राप्त होता है।), दारुण निन्दा, जाति वन्धुओंका विनाश, भोगोंका क्षय; अथवा उसके घरको अग्नि = पावक जलाता है; काया छोड़नेपर वह दुर्बुद्धि नर्कमे उत्पन्न होता है।

जेतवन

बहुभक्तिक ( भिक्षु )

१४१—न नग्गचरिया न जटा न पङ्का

नानासका थण्डिलसायिका वा ।

रजोवज्जल्लं उक्कुटिकप्पधानं

सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकह्वं ॥१३॥

( न नग्गचर्या न जटा न पङ्कं

नाऽनशनं स्थण्डिलशायिका वा ।

रजोजलीयं उक्कुटिकप्रधानं

शोधयन्ति मर्त्यं अवितोर्णाकाक्षम् ॥१३॥ )

अनुवाद—जिस पुरुषकी आकांक्षाये समाप्त नहीं हो गई, उस मनुष्यकी शुद्धि, न नंगे रहनेसे, न जटासे, न पङ्क ( लपेटने ) से, न फाका (=उपवास) करनेसे, न कडी भूमिपर सोनेसे, न धूल लपेटनेसे, न उकड़ूँ बैठनेसे होती है।

जेतवन

सन्तति ( महामात्त्य )

१४२—अलङ्कृतो चेपि समं चरेय्य

सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी ।

सन्वेसु भूतेसु निधाय दण्डं  
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥१४॥

( अलंकृतश्चंदपि शमं चरेत्  
शान्तो दान्तो नियतो ब्रह्मचारी ।

सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डं  
स ब्राह्मणः स श्रमणः स भिक्षुः ॥१४॥ )

अनुवाद—अलंकृत रहते भी यदि वह शान्त, दान्त, नियमतत्पर, ब्रह्म-  
चारी, सारे प्राणियोंके प्रति दंडयागी है, तो वही ब्राह्मण  
है, वही श्रमण (=संन्यासी) वही भिक्षु है ।

जेतवन

पिलोतिक ( धेर )

१४३—हिरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति ।

यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्दो कसामिव ॥१५॥

( हीनिषेधः पुरुषः कश्चित् लोकं विद्यते ।

यो निन्दां न प्रबुध्यति अद्वो भद्रः कशामिव ॥१५॥ )

अनुवाद—लोकमें कोई पुरुष होते हैं, जो ( अपने ही ) लज्जा करके  
निपिद्ध ( कर्म ) को नहीं करते, जैसे उत्तम घोड़ा कोड़े  
को नहीं सह सकता, वैसे ही वह निन्दाको नहीं सह सकते ।

१४४—अस्सो यथा भद्दो कसानिविट्ठो

आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।

सद्धाय सीलेन च वीरियेन च

समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।

सम्पन्नविज्ञाचरणा पतिस्सता

पहस्सया दुक्खमिदं अनप्पकं ॥१६॥

( अश्वो यथा भद्रः कशानिविष्ट

आत्तापिनः संवेगिनो भवत ।

श्रद्धया शीलेन च वीर्येण च

समाधिना धर्मविनिश्चयेन च ।

सम्पन्नविद्याचरणाः प्रतिस्मृताः

प्रहास्यथ दुःखमिदं अनल्पकम् ॥१६॥)

अनुवाद—कोड़े पड़े उत्तम घोड़ेकी भाँति, उद्योगी, ग्लानियुक्त,  
( वेगवान् ) हो; श्रद्धा, आचार, वीर्य, समाधि, और धर्म-  
निश्चयसे युक्त ( वन ), विद्या और आचरणसे  
समन्वित हो, दौड़कर इस महान् दुःख(-राशि ) को पार  
कर सकते हो ।

१४५—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका

उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।

दारुं नमयन्ति तच्छका

अत्तानं दमयन्ति सुव्रता ॥१७॥

( उदकं हि नयन्ति नेतृकाः, इषुकारा नमयन्ति तेजनम् ।

दारुं नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति सुव्रताः ॥१७॥)

अनुवाद—नहरवाले पानी लेजाते हैं, बाण बनानेवाले बाणको ठीक  
करते हैं, बड़ड़ लकड़ीको ठीक करते हैं, सुन्दर व्रतवाले  
अपनेको दमन करते हैं ।

१०—दण्डवर्ग समाप्त

## ११—जरावग्गो

जेतवन

विसाखाकी सगिनी

१४६—कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।

अन्धकारेण ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥१॥

( को नु हासः क आनन्दो नित्यं प्रज्वलिते सति ।

अन्धकारेणाऽधनद्धाः प्रदीपं न गवेष्यथ ॥१॥)

अनुवाद—जब नित्य ही ( आग ) जल रही हो, तो क्या हँसी है,  
क्या आनन्द है ? अंधकारसे घिरे तुम दीपकको ( क्यों )  
नहीं ढूँढ़ते हो ?

राजगृह ( वेशुवन )

सिरिमा

१४७—पस्स चित्तकतं विम्बं अरुकायं समुस्सितं ।

आतुरं बहुसङ्कप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति ॥२॥

( पश्य चित्रीकृतं विम्बं अरुकायं समुच्छिन्नम् ।

आतुरं बहुसंकल्पं यस्य नास्ति ध्रुवं स्थितिः ॥२॥)

अनुवाद—दखो विचित्र शरीरको, जो व्रणोंसे युक्त, फूला, पीडित  
नाना संकल्पोसे युक्त है, जिसकी स्थिति अनियत है ।

जेतवन

उत्तरी ( धेरी )

१४८—परिजिणमिदं रूपं रोगनिडुं पभङ्गुरं ।  
भिज्जती पूतिसन्देहो मरणान्तं हि जीवितं ॥३॥  
( परिजीर्णमिदं रूपं रोगनीडं प्रभङ्गुरम् ।  
भिद्यते पूतिसन्देहो मरणान्तं हि जीवितम् ॥३॥ )

अनुवाद—यह रूप जीर्ण शीर्ण, रोगका घर, और भङ्गुर है, सड कर  
देह भग्न होती है; जीवन मरणान्त जो ठहरा ।

जेतवन

अधिमान ( भिक्षु )

१४९—यानि'मानि अपत्थानि अलावूनेव सारदे ।  
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति ॥४॥  
( यानीमान्यपत्थान्यलावूनीव शरदि ।  
कापोतकान्यस्थीनि तानि दृष्ट्वा का रतिः ॥४॥ )

अनुवाद—शरद कालकी अपत्थ लौकीकी भाँति ( फेंक दी गई ),  
या कबूतरोंकी सी ( सफेद होगई ) हड्डियोंको देखकर किस-  
को इस ( शरीरमे ) प्रेम होगा ?

जेतवन

रूपनन्दा ( धेरी )

१५०—अट्ठीनं नगरं क्तं मंसलोहितलेपनं ।  
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ॥५॥



( अस्थनां नगरं कृतं मांसलोहितलेपनम् ।

यत्र जरा च मृत्युद्वयं मानो घ्नश्चावहितः ॥१॥)

प्रनुवाद—हड्डियोंका ( एक ) नगर (=गड ) बनाया गया है, जो मांस और रक्तसे लेपा गया है; जिसमें जरा, और मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुये हैं ।

जेतवन

मालिका देवी

१५१—जीरन्ति वे राजरथा सुचित्रा

अथो सरीरमपि जरं उपेति ।

सतं च धम्मो न जरं उपेति

सन्तो ह वै सन्नि पवेदयन्ति ॥६॥

( जीर्यन्ति वै राजरथाः सुचित्रा अथ शरीरमपि जरामुपेति ।

सतां च धर्मो न जरामुपेति सन्तो ह वै सद्भ्यः प्रवेदयन्ति ॥६॥

प्रनुवाद—सुचित्रित राजरथ भी पुराने हो जाते हैं, और शरीर भी जराको प्राप्त होता है; ( किन्तु ) मज्जनोंका धर्म (=गुण) जराको नहीं प्राप्त होता, सन्त जन सत्पुरुषोंके वारेमें ऐसाही कहते हैं ।

जेतवन

( लाल ) उदायी ( थेर )

१५२—अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो'व जीरति ।

मंसानि तस्स बड्ढन्ति पज्जा तस्स न बड्ढति ॥७॥

( अल्पश्रुतोऽयं पुरुषो बलीवर्द इव जीर्यति ।

मांसानि तस्य बर्द्धन्ते प्रज्ञा तस्य न बर्द्धते ॥७॥)

अनुवाद—अल्पश्रुत (=अज्ञानी) पुरुष बैलकी भाँति जीर्ण होता है ।  
उसका मांस ही बढ़ता है, प्रज्ञा नहीं बढ़ती ।

१५३—अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिव्विसं ।  
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥८॥  
( अनेकजातिसंसारं समधाविपं अनिविशमानः ।  
गृहकारकं गवेपयन्, दुःखा जातिः पुनः पुनः ॥८॥ )

१५४—गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि ।  
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं ।  
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ॥९॥  
( गृहकारक, दृष्टोऽसि पुनर्गेहं न करिष्यसि ।  
सर्वास्ते पार्थिवका भग्ना गृहकूटं विसंस्कृतम् ।  
विसंस्कारगतं चित्तं तृणानां क्षयमध्दगात् ॥९॥ )

अनुवाद—बिना हूके अनेक जन्मों तक संसारमें दौड़ता रहा । ( इस काया रूपी ) कोठरीको बनानेवाले (=गृहकारक) को खोजते पुनः पुनः दुःख ( - यय ) जन्म में पड़ता रहा । हे गृहकारक ! ( अब ) तुझे पहिचान लिया, ( अब ) फिर तू घर नहीं बना सकेगा । तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गयीं, गृहका शिखर भी निर्मल हो गया । संस्कार-रहित चित्तवे तृणाका क्षय हो गया ।

वाराणसी ( ऋषिपत्तन )

महाधनी सेठका पुत्र

१५५—अचरित्त्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योव्वने धनं ।  
जिण्णकोचा'व क्खायन्ति खीणमच्छे'व पल्ले ॥१०॥

( अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।

जीर्णक्रौंच इव क्षीयन्ते क्षीणमत्स्य इव पल्लवे ॥१०॥)

१५६—अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।

सेन्ति चापातिखीणा'व पुराणानि अनुत्थुनं ॥११॥

( अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।

शेरते चापोऽतिक्षीण इव पुराणान्यनुतन्वन्तः ॥११॥)

अनुवाद—ब्रह्मचर्यको बिना पालन किये, जवानीमें धनको बिना कमाये, ( पुरुष ) मत्स्यहीन जलाशयमें बड़े क्रौंच पक्षीसे जान पड़ते हैं ।

११—जरावर्ग समाप्त

## १२—अत्तवग्गो

सुसुमारगिरि ( भेसकळावन )

बोधि राजकुमार

१५७—अत्तानं चे पियं जञ्जार क्खेय्य तं सुरक्खितं ।

तिण्णमञ्जतरं यामं पट्टिजग्गेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

( आत्मानं चेत् प्रियं जानीयाद् रक्षेत्तं सुरक्षितम् ।

त्रयाणामन्यतमं यामं प्रतिजागृयात् पण्डितः ॥ १ ॥ )

अत्रावाद—अपनेको यदि प्रिय समझा है, तो अपनेको सुरक्षित रखना चाहिये; पंडित ( जन ) (रातके) तीनों यामों (=पहरों) में से एकमें जागरण करे ।

जेतवन

( शाक्यपुत्र ) उपनन्द ( धेर )

१५८—अत्तानं एव पठमं पटिरूपे निवेशये ।

अथञ्जमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥ २ ॥

( आत्मानमेव प्रथमं प्रतिरूपे निवेशयेत् ।

अथान्यमनुशिष्यात् न क्लिश्येत् पण्डितः ॥ २ ॥ )

अनुवाद—पहिले अपनेको ही उचित ( काम ) में लगावे, ( फिर )  
यदि दूसरेको उपदेश करे, ( तो ) पंडित क्लेशको न  
प्राप्त होगा ।

जेतवन

( अभ्यासी ) तिस्स ( थेर )

१५६—अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्जमनुसासति ।

सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥३॥

( आत्मानं चेत् तथा कुर्याद् यथाऽन्यमनुशास्ति ।

सुदान्तो वत दमयेद्, आत्मा हि किल दुर्दमः ॥३॥ )

अनुवाद—अपनेको वैसा बनावे, जैसा दूसरेको अनुशासन करना है;  
( पहिले ) अपनेको भली प्रकार दमन करे; वस्तुतः  
अपनेको दमन करना ( ही ) कठिन है ।

जेतवन

कुमार कस्सपकी माता ( थेरी )

१६०—अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।

अत्तना'व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥४॥

(आत्मा<sup>१</sup> हि आत्मनो नाथः को हि नाथः परः स्यात् ।

आत्मनैव सुदान्तन नाथं लभते दुर्लभम् ॥४॥ )

१. भगवद्गीता ( अध्याय ६ ) में—

“उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥४॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।

‘ अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥५॥ ”

अनुवाद—( पुरुष ) अपने ही अपना मालिक है, दूसरा कौन मालिक हो सकता है; अपनेको भली प्रकार दमन कर लेने पर ( वह एक ) दुर्लभ मालिकको पाता है ।

जेतवन

महाकाल ( उपासक )

१६१—अत्तना'व कतं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं ।

अभिमन्यति दुम्मेधं वजिरं 'व'स्ममयं मणिं ॥५॥

( आत्मनैव कृतं पापं आत्मजं आत्मसम्भवम् ।

अभिमन्यति दुर्मेधसं वज्रमिवाश्ममयं मणिम् ॥५॥ )

अनुवाद—अपनेसे जात, अपनेसे उत्पन्न, अपनेसे किया पाप, ( करने-वाले ) दुर्बुद्धिको पापाणस्य वज्रमणि ( चोटकी ) भोंति मन्यन (=पीड़ित) करता है ।

जेतवन

देवदत्त

१६२—यस्सच्चन्तदुस्मील्यं मालुवा मालमिवोततं ।

करोति सो तथत्तानं यथा 'नं इच्छती दिसो ॥६॥

( यस्याऽऽत्यन्तदौःशील्यं मालुवा मालमिवोततम् ।

करोति स तथात्मानं यथेनमिच्छन्ति द्विषः ॥६॥ )

अनुवाद—मालुवालता<sup>१</sup>से वेष्टित शाल( वृक्ष )की भोंति जिसका दुराचार फैला हुआ है; वह अपनेको वैसा ही कर लेता है, जैसा कि उसके शत्रु चाहते हैं ।

<sup>१</sup> मालुवा एक लता है, जा जिस वृक्षपर चढ़ती है, वर्षामें पानीके भारसे उसे तोड़ डालती है ।

राजगृह ( वेणुवन )

संघमें फूटके समय

१६३—सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च ।

यं वे हितञ्च माधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥७॥

( सुकराण्यसाधून्त्यात्मनोऽहितानि च ।

यद् वै हितं च साधु च तद् वै परमदुष्करम् ॥७॥ )

अनुवाद—अनुचित और अपने लिये अहित ( कर्मोंका करना )

सुकर है; ( लेकिन ) जो हित और उचित है, उसका करना परम दुष्कर है ।

जेतवन

काल ( धेर )

१६४—यो शासन अरहतं अरियानं धम्मजीविनं ।

पटिकोसति दुस्सेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं ।

फलानि वट्ठकस्सेव अत्तहज्जाय फुल्लति ॥८॥

( यः शासनमर्हतां आर्याणां धर्मजीविनाम् ।

प्रतिकुड्यति दुर्मेधा दृष्टिं निःश्रित्य पापिकाम् ।

फलानि काष्ठकस्यैवान्महत्यायै फुल्लति ॥८॥ )

अनुवाद—धर्मज्ञो, आर्य, अर्हत्तोंके शासन(=धर्म)को, जो दुर्बुद्धि

बुरी दृष्टिमें निन्दता है; यह बाँसके फलकी भाँति अपनी हत्याके लिये फूलता है ।

जेतवन

( चूळ ) काल ( उपासक )

१६५—अत्तना 'व कतं पापं अत्तना संकिलिस्मति ।

अत्तना अकतं पापं अत्तना 'व विसुज्झति ॥

सुद्धिं असुद्धिपच्चतं नज्जो अज्जं विसोधये ॥९॥

(आत्मनैव कृतं पापं आत्मना संक्लिश्यति ।  
 आत्मनाऽकृतं पापं आत्मनैव विशुध्यति ।  
 शुद्धयशुद्धी प्रत्यात्मं नाऽन्योऽन्यं विशोधयेत् ॥९॥ )

अनुवाद—अपनेमे किया पाप अपनेको ही मलिन करता है, अपने पाप न करे तो अपने ही शुद्ध रहता है; शुद्धिअशुद्धि प्रत्येक (आदमी)की अलग अलग है; दूसरा (आदमी)दूसरेको शुद्ध नहीं कर सकता ।

जेतवन

अत्तदत्थ ( येर )

१६६—अत्तदत्थं परत्थेन बहुनाऽपि न हापये ।

अत्तदत्थमभिज्ञाय सदत्थपसुतो सिया ॥१०॥

(आत्मनोऽर्थं परार्थं बहुनाऽपि न हापयेत् ।

आत्मनोऽर्थमभिज्ञाय सदर्थप्रसितः स्यात् ॥१०॥ )

अनुवाद—परायेके बहुत हितके लिये भी अपने हितकी हानि न करे; अपने हितको जान कर सच्चे हितमे लगे ।

१२—आत्मवर्ग समाप्त



## १३—लोकवग्गो

जेतवन

कोई अल्पवयस्क भिक्षु

१६७—हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे ।

मिच्छादिट्ठि न सेवेय्य न सिया लोक-वड्ढनो ॥ १ ॥

( हीनं धर्मं न सेवेत, प्रमादेन न संवसेत् ।

मिथ्यादृष्टिं न सेवेत, न स्यात् लोकवर्द्धनः ॥ १ ॥ )

अनुवाद—पाप(=नीच धर्म)को न सेवन करे, न प्रमादसे लिस  
होवे, झूठी धारणाको न सेवन करे, ( आदमीको ) लोक-  
(=जन्म मरण )-वर्द्धक नहीं बनना चाहिये ।

कपिलवस्तु ( न्यग्रोधाराम )

सुद्धोदन

१६८—उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे ।

धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्मि च ॥ २ ॥

( उत्तिष्ठेत् न प्रमायेद् धर्मं सुचरितं चरेत् ।

धर्मचारी सुखं शेतेऽस्मिं लोके परत्र च ॥ २ ॥ )

१६६—धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे ।

धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परमिह च ॥३॥

( धर्म चरेत् सुचरितं न तं दुश्चरितं चरेत् ।

धर्मचारी सुखं शंतेऽस्मिन् लोके परत्र च ॥३॥ )

अनुवाद—उत्साही बने, आलसी न बने, सुचरित धर्मका आचरण करे, धर्मचारी ( पुरुष ) इस लोक और परलोकमें सुख-पूर्वक सोता है । सुचरित धर्मका आचरण करे, दुश्चरित कर्म (=धर्म ) का सेवन न करे । धर्मचारी ( पुरुष ) ० ।

जेतवन

पाँच सौ शानां ( भिक्षु )

१७०—यथा बुच्चूलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं ।

एवं लोकं अवैकखन्तं मच्चुगजा न पस्सति ॥४॥

( यथा बुद्बुदकं पश्येद् यथा पश्येत् मरीचिकाम् ।

एवं लोकमवैक्षमाणं मृत्पुगजो न पश्यति ॥४॥ )

अनुवाद—जैसे बुल्लुलेको देखता है, जैसे ( मरु-)मरीचिकाको देखता है, लोकको वैसे हो ( जो पुरुष ) देखता है, उसकी ओर यमराज ( आख उठाकर ) नहीं देख सकता ।

राजगृह ( वेणुवन )

अभय राजकुमार

१७१—एथ पस्सथिमं लोकं चित्तं राजपथोपमं ।

यत्थ वाला विसीदन्ति, नत्थि सङ्गो विजानतं ॥५॥

( एत पश्यतेमं लोकं चित्रं राजपथोपमम् ।

यत्र वाला विपीदन्ति नास्ति संगो विजानताम् ॥५॥ )

अनुवाद—आओ, विचित्र राजपथके समान इस लोकको देखो, जिसमें  
मूढ़ आसक्त होते हैं, ज्ञानी जन आसक्त नहीं होते ।

जेतवन

मग्गुज्जानि ( थेर )

१७२—यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति ।

सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥६॥

( यश्च पूर्वं प्रमाद्य पश्चात् स न प्रमाद्यति ।

स इमं लोकं प्रभासयत्येवान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—जो पहिले भूल कर फिर भूल नहीं करता, वह मेघसे उन्मुक्त  
चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है ।

जेतवन

अगुलिमाल ( थेर )

१७३—यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिधिग्यति ।

सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥७॥

( यस्य पापं कृतं कर्म कुशलेन पिधीयते ।

स इमं लोकं प्रभासयत्येवान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—जो अपने किये पाप कर्मोंको पुण्यसे ढाक देता है, वह  
मेघसे उन्मुक्त० ।

आलवी

रंगरेजकी कन्या

१७४—अन्धभूतो अयं लोको तनुकेथ विपस्सति ।

सकुन्तो जालमुत्तो'व अप्पो सग्गाय गच्छति ॥८॥

( अन्धभूतोऽयं लोकः, तनुकोऽत्र विपश्यति ।

शकुन्तो जालमुक्त इवाल्पः स्वर्गाय गच्छति ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—यह लोक अन्धे जैसा है, यहाँ देखनेवाले थोड़े ही हैं; जालमे मुक्त पक्षीकी भाँति विरले ही स्वर्गको जाते हैं ।

जितवन

तीस भिक्षु

१७५—हंसादिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया ।

नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिणि ॥ ६ ॥

( हंसा आदित्यपथे यन्ति, आकाशे यन्ति ऋद्धिया ।

नीयन्ते धीरा लोकात् जिज्वा मारं सवाहिनोकम् ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—हंस सूर्यपथ (=आकाश)मे जाते हैं, (योगी) ऋद्धि(=बल)-से आकाशमे जाते हैं, धीर ( पुरुष ) सेना-सहित मारको पराजित कर लोकमे ( निर्वाणको ) ले जाये जाते हैं ।

जितवन

चिंचा ( माणविका )

१७६—एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्म जन्तुनो ।

वित्तिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥ १० ॥

( एकं धर्ममतीतस्य मृषावादिनो जन्तोः ।

वित्तीर्णपरलोकस्य नास्ति पापमकार्यम् ॥ १० ॥ )

अनुवाद—जो धर्मको अतिक्रमण कर चुका, जो प्राणी मृषावादी है, जो परलोक(का ख्याल ) छोड़ चुका है, उसके लिये कोई पाप अकरणीय नहीं ।

जितवन

( अयुक्त दान )

१७७—न [ वे ] कदरिया देवलोकं वजन्ति

बाला ह वे न प्पसंसन्ति दानं ।

धीरो च दानं अनुमोदमानो

तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥ ११ ॥

( न [ वै ] कदर्या देवलोकं व्रजंति

बाला ह व न प्रशंसंति दानम् ।

धीरश्च दानं अनुमोदमानस्तेनैव

स भवति सुखी परत्र ॥ ११ ॥ )

अनुवाद—कंजूस देवलोक नहीं जाते, मूढ़ ही दानकी प्रशंसा नहीं करते; धीर दानका अनुमोदन कर, उसी( कर्म )से पर ( लोक )में सुखी होता है ।

जेतवन

अनाथपिण्डिकके पुत्रका मरण

१७८—पथव्या एकरज्जेन मग्गस्स गमनेन वा ।

सम्बलोकाधिपत्त्येन सोतापत्तिफलं वरं ॥ १२ ॥

( पृथिव्या एकराज्यात् स्वर्गस्य गमनाद् वा ।

सर्वलोकाऽऽधिपत्याद् वा स्रोतआपत्तिफलं धरम् ॥ १२ ॥ )

अनुवाद—( सारी ) पृथिवीका अकेला राजा होनेसे, या स्वर्गके गमनसे, ( या ) सभी लोकोके अधिपति होनेसे भी स्रोतआपत्ति\* फल ( का मिलना ) श्रेष्ठ है ।

१३—लोकवर्ग समाप्त

\* जो पुरुष निर्वाण-गामी मार्गपर इस प्रकार आरूढ़ हो जाता है, कि फिर वह उससे भ्रष्ट नहीं हो सकता, उसे स्रोत-आपन्न ( = धारमें पडा ) कहते हैं । इसी पदके लाभको स्रोत-आपत्ति-फल कहते हैं ।

## १४—बुद्धवग्गो

उरुवेला ( बोधिमड )

मागन्दिय ( ब्राह्मण )

- १७६—यस्स जितं नावजीयति  
जितमस्स नो याति कोचि लोके ।  
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सय ? ॥१॥  
( यस्य जितं नावजीयते  
जितमस्य न याति कश्चिल्लोके ।  
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेष्यथ ? ॥१॥ )
- १८०—यस्स जालिनी विसत्तिका  
तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे ।  
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सय ? ॥२॥  
( यस्य जालिनी विषात्मिका तृष्णा  
नास्ति कुत्रचित् नेतुम् ।  
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेष्यथ ? ॥२॥ )

अनुवाद—जिसका जीता बेजीता नहीं किया जा सकता, जिसके जीते ( राग, द्वेष, मोह फिर ) नहीं लौटते; उस अपद (=स्थान-रहित), अनन्तगोचर (=अनन्तको देखनेवाले) बुद्धको किस पथसे प्राप्त करोगे ? जिसकी जाल फैलानेवाली विष-रूपी तृष्णा कहीं भी लेजाने लायक नहीं रही; उस अपद ०।

सकाश्य नगर

देव, मनुष्य

१८१—ये भाणपसुता धीरा नेवखम्मूपसमे रता ।

देवापि तेसं पिहयन्ति मम्बुद्धानं सतीमत् ॥३॥

( ये ध्यानप्रसिता धीरा नैष्कर्म्योपशमे रताः ।

देवा अपि तेषां स्पृहयन्ति संबुद्धानां स्मृतिमताम् ॥३॥ )

अनुवाद—जो धीर ध्यानमे लग्न, निष्कर्मता और उपशममे रत हैं, उन स्मृतिमान् (=सचेत) बुद्धोंकी देवता भी स्पृहा (=होड़) करते हैं ।

वाराणसी

परकपत्त ( नागराज )

१८२—किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चानं जीवितं ।

किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥४॥

( कृच्छो मनुष्यप्रतिलाभः कृच्छं मर्त्यानां जीवितम् ।

कृच्छं सद्धर्मश्रवणं कृच्छो बुद्धानां उत्पादः ॥४॥ )

अनुवाद—मनुष्य( योनि )का लाभ कठिन है, मनुष्यका जीवन ( मिलना ) कठिन है, सच्चा धर्म सुननेको मिलना कठिन है, बुद्धों (=परम ज्ञानियों) का जन्म कठिन है ।

जेतवन

आनन्द (थेर) का प्रश्न

१८३—सब्बपापस्स अकरणं कुशलस्य उपसम्पदा ।

स-चित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान 'सासनं ॥५॥

(सर्घपापस्याकरणं कुशलस्योपसम्पदा ।

स्वचित्तपर्यवदापनं एतद् बुद्धानां शासनम् ॥५॥ )

अनुवाद—सारे पापोंका न करना, पुण्योका संचय करना, अपने चित्तको परिशुद्ध करना, यह है बुद्धोंकी शिक्षा ।

जेतवन

आनन्द (थेर)

१८४—खन्ती परमं तपो तितिक्ष्वा ,

निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा ।

नहि पब्बजितो परुपघाती ,

समणो होति परं विहेठयन्तो ॥६॥

( क्षान्तिः परमं तपः तितिक्षा निर्वाणं परमं वदन्ति बुद्धाः ।

नहि प्रव्रजितः परोपघाती श्रमणो भवति परं विहेठयन् ॥६॥ )

१८५—अनुपवादो अनुपघातो प्रातिमोक्खे च संवरो ।

मत्तञ्जुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं ।

अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥७॥

( अनुपवादोऽनुपघातः प्रातिमोक्षे च संवरः ।

मात्राज्ञता च भक्ते प्रान्तं च शयनासनम् ।

अधिचित्ते चायोग एतद् बुद्धानां शासनम् ॥७॥ )



अनुवाद—क्षमा है परम तप, और तितिक्षा बुद्ध निर्वाणको परम (=उत्तम) बतलाते हैं; दूसरेका घात करनेवाला, दूसरेको पीड़ित करनेवाला प्रव्रजित (=गृहत्यागी), श्रमण (=संन्यासी) नहीं हो सकता। निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष (=भिक्षु-नियम, आचार-नियम) द्वारा अपनेको सुरक्षित रखना, परिमाण जानकर भोजन करना, एकान्तमे सोना-बैठना (=शयनासन=निवासगृह), चित्तको योगमे लगाना, यह बुद्धोकी शिक्षा है।

जितवन

( उदास भिक्षु )

१८६—न कहाणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति ।

अप्पस्सादा दुखा कामा इति विज्जाय पण्डितो ॥८॥

( न कार्पाणवर्षेण तृप्तिः कामेषु विद्यते ।

अल्पास्वादा दुःखाः कामा इति विज्ञाय पण्डितः ॥८॥ )

१८७—अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति ।

तएहक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥९॥

( अपि दिव्येषु कामेषु रतिं स नाधिगच्छति ।

तृणाक्षयरतो भवति सम्यक्संबुद्धश्रावकः ॥९॥ )

अनुवाद—यदि रूपयो (=कहाण) की वर्षा हो, तो भी (मनुष्य की) कामो (=भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती। ( सभी ) काम (=भोग) अल्प-स्वाद, ( और ) दुःखद हैं, ऐसा जानकर पण्डित देवताओंके भोगोंमें भी रति नहीं करता; और सम्यक्संबुद्ध (=बुद्ध) का श्रावक (=अनुयायी) तृणा-को नाश करनेमें लगता है।

जेतवन

अग्निदत्त ( ब्राह्मण )

१८८—बहुं वे सरणं यन्ति पञ्चतानि वनानि च ।

आरामस्वखचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥ १० ॥

( बहु वै शरणं यन्ति पर्वतान् वनानि च ।

आरामवृक्षचैत्यानि मनुष्या भयतजिताः ॥ १० ॥ )

१८९—नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं ।

नेतं सरणमागम्म सञ्चदुक्खा पमुच्चति ॥ ११ ॥

( नैतत् खलु शरणं क्षेमं नैतत् शरणमुत्तमम् ।

नैतत् शरणमागम्य सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ )

अनुवाद—मनुष्य भयके सारे पर्वत, वन, आराम ( = उद्यान ), वृक्ष, चैत्य ( = चौरा ) ( आदिको देवता जान उनकी ) शरणमे जाते हैं; किन्तु ये शरण भंगलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, ( क्योंकि ) इन शरणोंमें जाकर सब दुःखोंसे छुटकारा नहीं मिलता ।

जेतवन

अग्निदत्त ( ब्राह्मण )

१९०—यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्खञ्च सरणं गतो ।

चत्तारि अरियसञ्च्यानि सम्मपपज्जाय पस्सति ॥ १२ ॥

( यः बुद्धं च धर्मं च संघं च शरणं गतः ।

चत्वार्यार्यसन्त्यानि सज्यक् प्रज्ञया पश्यति ॥ १२ ॥ )

१९१—दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्रमं ।

अरियञ्च'ट्ठङ्गिकं मगं दुक्खूपसमगामिन्नं ॥ १३ ॥

( दुःखं दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।  
आर्याष्टांगिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ॥१३॥ )

१६२—एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।

एतं सरणमागम्य सञ्चदुक्खा पमुच्चति ॥१४॥

( एतत् खलु शरणं क्षेमं एतत् शरणमुत्तमम् ।  
एतत् शरणमागम्य सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥१४॥ )

अनुवाद—जो बुद्ध ( =परमज्ञानी ), धर्म ( =सत्यज्ञान ) और संघ ( =परमज्ञानियोंके अनुयायियोंके समुदाय )की शरण गया, जो चारो आर्यार्थों\* को प्रज्ञासे भलीप्रकार देखता है । ( वह चार सत्य हैं—) ( १ ) दुःख, ( २ ) दुःखकी उत्पत्ति, ( ३ ) दुःखका अतिक्रमण, और ( ४, दुःख नाशक ) आर्य-अष्टांगिक मार्ग†—जो कि दुःखको शमनकरनेकी ओर ले जाता है; ये हैं मंगलप्रद शरण, ये हैं उत्तम शरण, इन शरणोंको पाकर ( मनुष्य ) सारे दुःखोंसे छूट जाता है ।

जैतवन

आनन्द ( थेर )का प्रश्न

१६३—दुल्लभो पुरिसाजज्जो न सो सञ्चत्य जायति ।

यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेवति ॥१५॥

\* दुःख, उसका कारण, उसका नाश, और नाशका उपाय—यह बुद्ध द्वारा आविष्कृत चार उत्तम सच्चाइयाँ हैं ।

† आर्य-अष्टांगिक मार्ग हैं—ठीक धारणा, ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक उद्योग, ठीक स्मृति, और ठीक ध्यान ।

( दुर्लभः पुरुषाजानेयो न स सर्वत्र जायते ।

यत्र स जायते धीरः तत् कुलं सुखमंधते ॥ १५ ॥ )

अनुवाद—उत्तम पुरुष दुर्लभ है, वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता, वह धीर ( पुरुष ) जहाँ उत्पन्न होता है, उस कुलमें सुखकी वृद्धि होती है ।

जेतवन

बहुतसे भिक्षु

१६४—सुखो बुद्धानं उत्पादो सुखा सद्धम्मदेसना ।

सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥ १६ ॥

( सुखो बुद्धानां उत्पादः सुखा सद्धर्म-देशना ।

सुखा संघस्य सामग्री समग्राणां तपः सुखम् ॥ १६ ॥ )

अनुवाद—सुखदायक है बुद्धोंका जन्म, सुखदायक है सच्चे धर्मका उपदेश, संघमें एकता सुखदायक है; और सुखदायक है, एकतायुक्त हो तप करना ।

चारिकाके समय

करसप बुद्धका सुवर्ण चैत्य

१६५—पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके ।

पपञ्चसमतिक्रान्ते तिण्णसोकपरिद्वे ॥ १७ ॥

( पूजार्हान् पूजयतो बुद्धान् यदि वा श्रावकान् ।

प्रपञ्चसमतिक्रान्तान् तीर्णशोकपरिद्वान् ॥ १७ ॥ )

१६६—ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये ।

न सक्का पुञ्जं संखातुं इमेत्तम्पि केनचि ॥ १८ ॥

( तान् तादृशान् पूजयतो निर्वृतान् अकुतोभयान् ।

न शक्यं पुण्यं संख्यातुं एवम्मात्रमपि केनचित् ॥ १८ ॥)

अनुवाद—पूजनीय बुद्धों, अथवा ( उनके ) अनुगामियों—जो संसार को अतिक्रमणकर गये हैं, जो शोक भयको पारकर गये हैं—की पूजाके, ( या ) उन ऐसे मुक्त और निर्भय ( पुरुषों ) की पूजाके, पुण्यका परिमाण “इतना है”—यह नहीं कहा जा सकता ।

१४—बुद्धवर्ग समाप्त

## १५—सुखवग्गो

शाक्य नगर

जाति कलहके उपशमनार्थ

- १६७—सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।  
 वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥ १ ॥  
 ( सुसुखं वत ! जीवामो वैरिष्ववैरिणः ।  
 वरिषु मनुष्येषु विहरामोऽवैरिणः ॥ १ ॥ )
- १६८—सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।  
 आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥ २ ॥  
 ( सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेष्वनानुराः ।  
 आतुरेषु मनुष्येषु विहरामोऽनानुराः ॥ २ ॥ )
- १६९—सुसुखं वत ! जीवाम उत्सुकेसु अनुत्सुका ।  
 उत्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुत्सुका ॥ ३ ॥  
 ( सुसुखं वत ! जीवाम उत्सुकेष्वनुत्सुकाः ।  
 उत्सुकेषु मनुष्येषु विहराम अनुत्सुकाः ॥ ३ ॥ )

अनुवाद—वैरियोंके प्रति ( भी ) अवैरी हो, अहो ! हम ( कैसा ) सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; वैरी मनुष्योंके बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं । भयभीत मनुष्योंमे अभय हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; भयभीत मनुष्यों के बीच निर्भय होकर हम विहार करते हैं । उत्सुकों (=आसक्तों)मे उत्सुकता-रहित हो० ।

पचसाला ( ब्राह्मणग्राम, मगध )

मार

२००—सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चन ।

प्रीतिभक्त्वा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥४॥

( सुसुखं वत ! जीवामो येषां नो नास्ति किञ्चन ।

प्रीतिभक्ष्या भविष्यामो देवा आभास्वरा यथा ॥४॥ )

अनुवाद—जिन हम ( लोगों )के पास कुछ नहीं, अहो ! वह हम कितना सुखसे जीवन बिता रहे हैं । हम आभास्वर देवताओं की भोग्ति प्रीतिभक्ष्य (=प्रीति ही भोजन है जिनका) हैं ।

जेतवन

कोसलराज

२०१—जयं वैरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो ।

उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं ॥५॥

( जयो वैरं प्रसूते दुःखं शेते पराजितः ।

उपशान्तः सुखं शान्ते हित्वा जयपराजयौ ॥५॥ )

अनुवाद—विजय वैरको उत्पन्न करती है, पराजित ( पुरुष ) दुःखकी ( नींद ) सोता है; ( राग आदि दोष जिसके ) शान्त ( है,

वह पुरुष ) जय और पराजयको छोड़ सुखकी ( नींद )  
सोता है ।

जेतवन

कोई कुलकन्या

२०२—नत्थि रागसमो अग्नि, नत्थि दोससमो कलि ।

नत्थि खन्धसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥६॥

( नास्ति रागसमोऽग्निः, नास्ति द्वेषसमः कलिः ।

नास्ति स्कन्धसमा दुःखाः, नास्ति शान्तिपरं सुखम् ॥६॥ )

अनुवाद—रागके समान अग्नि नहीं, द्वेषके समान मल नहीं, ( पाँच )  
स्कन्धों के ( =समुदाय ) समान दुःख नहीं, शान्तिसे  
बढ़कर सुख नहीं ।

आलवी

एक उपासक

२०३—जिघच्छा परमा रोगा, सङ्गारा परमा दुग्वा ।

एतं जत्वा यथाभूतं निब्बाणं परमं सुखं ॥७॥

( जिघत्सा परमो रोगः, संस्कारः परमं दुःखम् ।

एतद् ज्ञात्वा यथाभूतं निर्वाणं परमं सुखम् ॥७॥ )

अनुवाद—भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं,

\* रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान यह पाँच स्कन्ध हैं । वेदना, सज्ञा,  
संस्कार विज्ञानके अन्दर हैं । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ही रूप स्कन्ध  
है । जिसमें न भारीपन है, और जो न जगह घेरता है, वह विज्ञान स्कन्ध  
है । रूप ( =Matter ) और विज्ञान ( =Mind ) इन्हींके मेलसे सारा  
ससार बना है ।



यह जान, यथार्थ निर्वाणको सबसे बड़ा सुख ( कहा जाता है ) ।

जैतवन

( पसेनदि कोसलराज )

२०४—आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं ।

विस्सासपरमा जाती निब्बाणं परमं सुखं ॥८॥

( आरोग्यं परमो लाभः, सन्तुष्टिः परमं धनम् ।

विश्वासः परमा ज्ञातिः, निर्वाणं परमं सुखम् ॥८॥ )

अनुवाद—निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण परम (=सबसे बड़ा) सुख है।

वैशाली

तिस्स ( धेर )

२०५—प्रविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च ।

निद्दरो होति निष्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥९॥

( प्रविवेकरसं पीत्वा रसं उपशमस्य च ।

निर्दरो भवति निष्पापो धर्मं प्रीतिरसं पिवन् ॥९॥ )

अनुवाद—एकान्त ( चिन्तन ) के रस, तथा उपशम (=शान्ति) के रसको पीकर ( पुरुष ), निडर होता है, ( और ) धर्मका प्रेमरस पानकर निष्पाप होता है ।

बेलुवग्राम ( वेणुग्राम, वैशीलीके पास )

सक्क ( देवराज )

२०६—साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।

अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥१०॥

( साधु दर्शनमार्याणां सन्निवासः सदा सुखः ।

अदर्शनेन बालानां नित्यमेव सुखो स्यात् ॥१०॥

२०७—बालसंगतिवारी हि दीर्घमध्वानं सोचति ।

दुःखो बालेहि संवासां अमित्तेनैव सञ्चदा ।

धीरो च सुखसंवासो जातीनं 'व समागमो ॥११॥

( बालसंगतिचारी हि दीर्घमध्वानं शोचति ।

दुःखो बालैः संवासांऽमित्रेणैव सधदा ।

धीरश्च सुखसंवासो ज्ञातीनामिव समागमः ॥११॥)

अनुवाद—आर्यो\* (=सत्पुरुषों) का दर्शन सुन्दर है, सन्तोके साथ निवास सदा सुखदायक होता है; मूढ़ोंके न दर्शन होनेसे ( भलुप्य ) सदा सुखी रहता है । मूढ़ोंकी संगतिमें रहने-वाला दीर्घ काल तक शोक करता है, मूढ़ोंका सहवास शत्रुकी तरह सदा दुःखदायक होता है, धन्धुओंके समागम-की भाँति धीरोंका सहवास सुखद होता है ।

बेलुवगाम

सक ( देवराज )

२०८—तस्मा हि धीरं च पञ्जञ्च बहु-स्सुतं च

धीरयूहसीलं वतवन्तमरियं ।

तं तादिसं सप्पुरिसं सुमंघं

भजेथ नक्खत्तपथं 'व चन्दिमा ॥१२॥

\*निर्वाणके पथपर अविचल रूपसे आरूढ स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा निर्वाण-प्राप्त=अर्हत् इन चार प्रकारके पुरुषोंको आर्य कहते हैं ।

( तस्माद्भि धीरं च प्राज्ञं च बहुश्रुतं च  
 धुर्यशीलं व्रतवन्तमार्यम् ।  
 तं तादृशं सत्पुरुषं सुमेधसं  
 भजेत नक्षत्रपथमिव चन्द्रमा ॥१२॥ )

अनुवाद—इसलिये धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती, आर्य एवं  
 सुबुद्धि सत्पुरुषका वैसेही सेवन करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-  
 पथका ( सेवन करता है ) ।

१५—सुखवर्ग समाप्त

## १६—पियवग्गो

जेतवन

तीन भिक्षु

- २०६—अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिञ्च अयोजयं ।  
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेत'तानुयोगिनं ॥१॥  
( अयोगे युंजन्नात्मानं योगे चायोजयन् ।  
अर्थं हित्वा प्रिय-ग्राही स्पृहयेदात्मानुयोगिनम् ॥१॥ )
- २१०—मा पियेहि समागच्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।  
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥२॥  
( मा प्रियैः समागच्छ, अप्रियैः कदाचन ।  
प्रियाणां अदर्शनं दुःखं, अप्रियाणां च दर्शनम् ॥२॥ )
- २११—तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको ।  
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥३॥  
( तस्मात् प्रियं न कुर्यात्, प्रियापायो हि पापकः ।  
ग्रन्थाः तेषां न विद्यन्ते येषां नास्ति प्रियाप्रियम् ॥३॥ )

अनुवाद—अयोग(=अनासक्ति)से अपनेको लगानेवाले, योग (=आसक्ति)से न योग देनेवाले, अर्थ (=स्वार्थ) छोड़ प्रियका ग्रहण करनेवाले आत्माऽनुयोगी (पुरुष)की स्पृहा करे। प्रियोका संग मत करो, और न कभी अप्रियो ही (का संग करो), प्रियोका न देखना दुःखद होता है, और अप्रियोका देखना (भी)। इसलिये प्रिय न बनावे, प्रियका नाश बुरा (लगता है); उनके (दिलमे) गाँठ नहीं पड़ती, जिनके प्रिय अप्रिय नहीं होते।

जेतवन

कोई कुटुम्बी

२१२—पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं ।

पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥४॥

( प्रियतो जायते शोकः प्रियतो जायते भयम् ।

प्रियतो विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥४॥)

अनुवाद—प्रिय ( वस्तु )से शोक उत्पन्न होता है, प्रियसे भय उत्पन्न होता है; प्रिय(के बन्धन)से जो मुक्त है, उसे शोक नहीं है, फिर भय कहाँसे ( हो ) ?

जेतवन

विशाखा ( उपासिका )

२१३—पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं ।

पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥५॥

( प्रेमतो जायते शोकः प्रेमतो जायते भयम् ।

प्रेमतो विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥५॥

अनुवाद—प्रेमसे शोक उत्पन्न होता है, प्रेमसे भय उत्पन्न होता है,  
प्रेमसे मुक्तको शोक नहीं, फिर भय कहाँसे ?

वैशाली ( कूटागारशाला )

लिच्छवि लोग

२१४—रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।  
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥६॥  
( रत्या जायते शोको रत्या जायते भयम् ।  
रत्या विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ॥६॥ )

अनुवाद—रति(=राग )से शोक उत्पन्न होता है, रतिसे भय उत्पन्न  
होता है० ।

जेतवन

अनित्थिगन्धकुमार

२१५—कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।  
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥७॥  
( कामतो जायते शोकः कामतो जायते भयम् ।  
कामतो विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥७॥ )

अनुवाद—कामसे शोक उत्पन्न होता है० ।

जेतवन

कोई ब्राह्मण

२१६—तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं ।  
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥८॥  
( तृष्णाया जायते शोकः तृष्णाया जायते भयम् ।  
तृष्णाया विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥८॥ )

अनुवाद—तृष्णासे शोक उत्पन्न होता है० ।

राजगृह ( वेणुवन )

पाँच सौ बालक

२१७—शीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवादिनं ।

अत्तनो कम्म कुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥६॥

( शीलदर्शनसम्पन्नं धर्मिष्ठं सत्यवादिनम् ।

आत्मनः कर्म कुर्वाणं तं जनः कुरुते प्रियम् ॥९॥ )

अनुवाद—जो शील (=आचरण) और दर्शन (=विद्या) से सम्पन्न, धर्ममे स्थित, सत्यवादी और अपने कामको करनेवाला है, उस ( पुरुष )को लोग प्रेम करते हैं ।

जेतवन

( अनागामी )

२१८—छन्दजातो अनक्खाते मनसा च फुटो सिया ।

कामेसु च अप्पट्ठिबद्धचित्तो उद्धंसोतो 'ति वुच्चति ॥ १० ॥

( छन्दजातोऽनाख्याते मनसा च स्फुरितः स्यात् ।

कामेषु चाऽप्रतिबद्धचित्त ऊर्ध्वस्रोता इत्युच्यते ॥१०॥ )

अनुवाद—जो अकथ्य(-वस्तु=निर्वाण)का अभिलाषी है, ( उसमे ) जिसका मन लगा है, कामो(=भोगों)में जिसका चित्त बद्ध नहीं, वह ऊर्ध्वस्रोत कहा जाता है ।

ऋषिपतन

नन्दिपुत्त

२१९—चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं ।

जातिमिता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं ॥११॥

( चिरप्रवासिनं पुरुषं दूरतो स्वस्त्यागतम् ।

ज्ञातिमित्राणि सुहृदश्चाऽभिनन्दन्त्यागतम् ॥११॥ )

२२०—तथैव कतपुञ्जम्पि अस्मा लोका परं गतं ।

पुञ्जानि पतिगणहन्ति प्रियं आतीव आगतं ॥१२॥

( तथैव कृतपुण्यमप्यस्मात् लोकात् परं गतम् ।

पुण्यानि प्रतिगृह्णन्ति प्रियं ज्ञातिमिवागतम् ॥१२॥ )

अनुवाद—चिर-प्रवासी (=चिर काल तक परदेशमें रहे ) दूर(देश)

से सानन्द लौटे पुरुषका, जातिवाले, मित्र और सुहृद् अभिनन्दन करते हैं ; इसी प्रकार पुण्यकर्मा ( पुरुष )को इस लोकसे पर( लोक )में जानेपर, ( उसके ) पुण्य ( कर्म ) प्रिय जाति( वालों )की भाँति स्वीकार करते हैं ।

१६—प्रियवर्ग समाप्त



## १७—कोधवग्गो

कपिलवस्तु ( न्यग्रोधाराम )

रोहिणी

२२१—कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं

सञ्जोजनं सञ्चमतिक्रमेय्य ।

तं नाम-रूपस्मिं असज्जमानं

अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा ॥ १ ॥

( क्रोधं जह्याद् विप्रजह्यात् मानं

संयोजनं सर्वमतिक्रमेत ।

तं नाम-रूपयोरसज्यमानं

अकिञ्चनं नाऽनुपतन्ति दुःखानि ॥ १ ॥

अनुवाद—कोधको छोड़े, अभिमानका त्याग करे, सारे संयोजनों  
(=बंधनों) से पार हो जाये, ऐसे नाम-रूपमें आसक्त न  
होनेवाले, तथा परिग्रहरहित ( पुरुष ) को दुःख सन्ताप  
नहीं देते ।

आलवी ( अगालव चैत्य )

कोई भिक्षु

२२२—यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं 'व धारये ।

तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥२॥

( यो वै उत्पतितं क्रोधं रथं भ्रान्तमिव धारयेत् ।

तमहं सारथिं ब्रवीमि, रस्मिग्गाह इतरो जनः ॥२॥ )

अनुवाद—जो चढ़े क्रोधको भ्रमण करते रथकी भांति पकड़ ले,  
उसे मैं सारथी कहता हूँ, दूसरे लोग लगाम पकड़नेवाले  
( मात्र ) हैं ।

राजगृह ( वेणुवन )

उत्तरा ( उपासिका )

२२३—अक्रोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।

जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिक्कवादिनं ॥३॥

( अक्रोधेन जयेत् क्रोधं, असाधुं साधुना जयेत् ।

जयेत् कदर्यं दानेन सत्येनाऽलीकवादिनम् ॥३॥ )

अनुवाद—अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको साधु(=भलाई)से  
जीते, कृपणको दानसे जीते, झूठ बोलनेवालेको सत्यसे  
( जीते ) ।

जेतवन

महामोग्गलान ( थेर )

२२४—सच्चं भणो न कुञ्जेय्य, दज्जा'प्पस्मिम्पि याचितो ।

एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥४॥

( सत्त्यं भणेत न कुञ्जेत्, दद्यादल्पेऽपि याचितः ।

एतैस्त्रिभिः स्थानैः गच्छेद् देवानामन्तिके ॥४॥ )

अनुवाद—सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी माँगनेपर दे, इन तीन बातोंसे ( पुरुष ) देवताओंके पास जाता है ।

साकेत (=अयोध्या )

ब्राह्मण

२२५—अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवृता ।

ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥५॥

( अहिंसका ये मुनयो नित्यं कायेन संवृताः ।

ते यन्ति अच्युतं स्थानं यत्र गत्वा न शोचन्ति ॥५॥ )

अनुवाद—जो मुनि ( लोग ) अहिंसक, सदा कायामें संयम करनेवाले हैं, वह ( उस ) अच्युत स्थान (=जिस स्थान पर पहुँच फिर गिरना नहीं होता )को प्राप्त होते हैं, जहाँ जाकर फिर नहीं शोक किया जाता ।

राजगृह ( गृध्रकूट )

राजगृह-श्रेष्ठीका पुत्र

२२६—सदा जागरमानानं अहोरत्तानुमिक्खिनं ।

निब्बाणं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥६॥

( सदा जाग्रतां अहोरात्रं अनुशिक्षमाणानाम् ।

निर्वाणं अधिमुत्तानां अस्तं गच्छन्ति आसवाः ॥६॥ )

अनुवाद—जो सदा जागता (=सचेत ) रहता है, रातदिन ( उत्तम ) सीख सीखनेवाला होता है, और निर्वाण ( प्राप्त कर ) मुक्त हो गया है, उसके आसव (=चित्त मल ) अस्त हो जाते हैं ।

जेतवन

अतुल ( उपासक )

२२७—पोराणमेतं अतुल ! नेतं अञ्जतनामिव ।

निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं ।

मितभाणिनमपि निन्दन्ति

नत्थि लोके अनिन्दितो ॥७॥

( पुराणमेतद् अतुल ! नैतद् अञ्जतनमेव ।

निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनम् ।

मितभाणिनमपि निन्दन्ति नाऽस्ति लोकेऽनिन्दितः ॥७॥ )

२२८—न चाहु न च भविस्सन्ति न चैतरहि विञ्जति ।

एकान्तं निन्दितो पोसो, एकान्तं वा पसंसितो ॥८॥

( न चाऽभूत् न च भविष्यति न चैतर्हि विद्यते ।

एकान्तं निन्दितः पुरुष एकान्तं वा प्रशंसितः ॥८॥ )

अनुवाद—हे अतुल ! यह पुरानी बात है, आजकी नहीं—( लोग )

बुध बैठे हुये की निन्दा करते हैं, और बहुत बोलनेवालेकी

भी, मितभाषीकी भी निन्दा करते हैं; दुनियामें अनिन्दित

कोई नहीं है । बिल्कुल ही निन्दित या बिल्कुल ही प्रशंसित

पुरुष न था, न होगा, न आजकल है ।

जेतवन

अतुल ( उपासक )

२२९—यञ्चे विञ्ज पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।

अच्छिद्दवुत्ति मेधावि पञ्जासीलसमाहितं ॥९॥

( यश्चेद् विज्ञाः प्रशंसन्ति अनुविच्य श्वः श्वः ।

अच्छिद्रवृत्तिं मेधाविनं प्रह्लाशीलसमाहितम् ॥९॥ )

२३०—नेकत्वं जम्बूनदस्येव को तं निन्दितुमर्हति ।

देवापि तं पसंसन्ति ब्रह्मणाऽपि पसंसितो ॥१०॥

( निष्कं जम्बूनदस्येव कस्तं निन्दितुमर्हति ।

देवा अपि तं प्रशंसन्ति ब्रह्मणाऽपि प्रशंसितः ॥१०॥ )

अनुवाद—अपने अपने ( दिलमें ) जान कर विज्ञ लोग अच्छिद्र वृत्ति  
(=दोपरहित स्वभाववाले )मेधावी, प्रज्ञा-शील-संयुक्त  
जिस ( पुरुष )की प्रशंसा करते हैं; जाम्बूनद ( सुवर्ण )  
की अशर्फीके समान उसकी कौन निन्दा कर सकता है;  
देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, ब्रह्माद्वारा भी वह  
प्रशंसित होता है ।

वेणुवन

वज्जिय ( भिक्षु )

२३१—कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवृतो सिया ।

कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ॥११॥

( कायप्रकोपं रक्षेत् कायेन संवृतः स्यात् ।

कायदुश्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरेत् ॥११॥ )

२३२—क्वीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संवृतो सिया ।

क्वी दुच्चरितं हित्वा क्वी सुचरितं चरे ॥१२॥

( वचः प्रकोपं रक्षेद् वाचा संवृतः स्यात् ।

वचो दुश्चरितं हित्वा वाचा सुचरितं चरेत् ॥१२॥ )

२३३—मनोप्पकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया ।

मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे ॥१३॥

( मनः प्रकोपं रक्षेत् मनसा संवृतः स्यात् ।

मनोदुश्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरेत् ॥१३॥ )

२३४—कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता ।

मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ॥१४॥

( कायेन संवृता धीरा अथ वाचा संवृताः ।

मनसा संवृता धीराः ते वै सुपरिसंवृता ॥१४॥ )

अनुवाद—कायाकी चंचलतासे रक्षा करे, कायासे संयत रहे, कायिक

दुश्चरितको छोड़ कायिक सुचरितका आचरण करे । वाणी

की चंचलतासे रक्षा करे, वाणीसे संयत रहे, वाचिक

दुश्चरितको छोड़, वाचिक सुचरितका आचरण करे । मनकी

चंचलतासे रक्षा करे, मनसे संयत रहे, मानसिक दुश्चरितको

छोड़, मानसिक सुचरितका आचरण करे ।

१७—क्रोधवर्ग समाप्त

## १८—मलवग्गो

जेतवन

गोधातक-पुत्र

२३५—पाण्डुपलासो'व दानिसि, यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता ।

उय्योगमुखे च तिट्ठसि पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥ १ ॥

(पाण्डुपलासमिवेदानीमसियमपुरुषाअपिचत्वां उपस्थिताः।

उद्योगमुखे च तिष्ठसि पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥ १ ॥ )

२३६—सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।

निद्धन्तमलो अनङ्गणो दिव्वं अरियभूमिमेहिसि ॥ २ ॥

( स कुरु द्वीपमात्मनः क्षिप्रं व्यायच्छस्व पण्डितो भव ।

निर्धूतमलोऽनङ्गणो दिव्यां आर्यभूमिं पश्यसि ॥ २ ॥ )

अनुवाद—पीले पत्तेके समान इस वक्त तू है, यमदूत तेरे पास आ खड़े हैं, तू प्रयाणके लिये तय्यार है, और पाथेय तेरे पास कुछ नहीं है । सो तू अपने लिये द्वीप ( = रक्षास्थान ) बना, उद्योग कर, पंडित बन, मल प्रक्षालित कर, दोष-रहित बन आर्योंके दिव्य पदको पायेगा ।

जेटवन

गोघातक-पुत्र ।

२३७—उपनीतवयो च दानिसि सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके ।

वासोपि च ते नत्थि अन्तरा पाथेय्यम्पि च तेन विज्जति ॥ ३ ॥

( उपनीतवयाद्दानीमसि

सम्पयातोऽसि यमस्याऽन्तिके ।

वासोऽपि च ते नाऽस्ति अन्तरा

पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥३॥

२३८—सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।

निद्धन्तमलो अनङ्गणो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥ ४ ॥

( स कुरु दीपमात्मनः क्षिप्रं व्याच्छस्य पण्डितो भव ।

निर्धूतमलोऽनङ्गणो न पुनर्जातिजरं उपेक्ष्यसि ॥४॥ )

अनुवाद—आयु तेरी समाप्त हो गई, यमके पास पहुँच चुका, निवास

( स्थान ) भी तेरा नहीं है, ( यात्राके ) मध्यके लिये तेरे

पास पाथेय भी नहीं । सो तू अपने लिये० ।

जेटवन

कोई ब्राह्मण

२३९—अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणो खणो ।

कम्मरो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ॥ ५ ॥

( अनुपूर्व्वेण मेधावी स्तोत्रं स्तोत्रं क्षणे क्षणे ।

कर्मारो रजतस्येव निर्धमेत् मलमत्तनः ॥५॥ )

अनुवाद—बुद्धिमान् ( पुरुष ) क्षण क्षण क्रमशः थोडा थोडा अपने

मलको ( वैसे ही ) ( जलावे ), जैसे कि सोनार चाँदीके

( मलको ) जलाता है ।



जेतवन

तिस्स ( थेर )

२४०—अयसा 'व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति ।

एवं अतिधोनचारिनं सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥६॥

( अयस्स इव मलं समुत्थितं त(स्सा)द्

उत्थाय तदेव खादति ।

एवं अतिधावनचारिणं स्वानि

कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ॥६॥)

अनुवाद—लोहेसे उत्पन्न मल (= मुर्चा ) जैसे जिसीसे उत्पन्न होता है, उसे ही खा डालता है; इसी प्रकार अति घंचल ( पुरुष )के अपने ही कर्म उसे दुर्गतिको ले जाते हैं ।

जेतवन

( लाल ) उदायी ( थेर )

२४१—असज्जायमला मन्ता अनुत्थानमला घरा ।

मलं वणस्स कोसज्जं प्रमादो रक्खतो मलं ॥७॥

( अस्वाध्यायमला मंत्रा अनुत्थानमला गृहाः ।

मलं वर्णस्य कौस्तोभं, प्रमादो रक्षतो मलम् ॥७॥ )

अनुवाद—स्वाध्याय (= स्वरपूर्वक पाठकी आवृत्ति ) न करना ( वेद -)मंत्रोका मल (= मुर्चा ) है, ( लीप पोत मरम्मत कर ) न उठाना घरोका मुर्चा है । शरीरका मुर्चा आलस्य है, अस्वाध्यायी रक्षकका मुर्चा है ।

रजगृह ( वेणुवन )

कोई कुलपुत्र

२४२—मलित्तिया दुच्चरितं मच्छेरं वदतो मलं ।

मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परमिह च ॥८॥

( मलं स्त्रिया दुश्चरितं मात्सर्यं ददतो मलम् ।

मलं वै पापका धर्म्मा अस्मिन् लोके परत्र च ॥८॥ )

२४३—ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं ।

एतं मलं पहत्वा न निम्मला होथ भिक्खवो ॥९॥

( ततो मलं मलतरं अविद्या परमं मलम् ।

एतत् मलं प्रहाय निर्मला भवत भिक्षवः ॥९॥ )

अनुवाद—स्त्रीका मल दुराचार है, कृपणता (= कंजूसी) दाताका मल है, पाप इस लोक और पर( लोक दोनों )में मल है फिर मलोमें भी सबसे बड़ा मल—महामल अविद्या है । हे भिक्षुओ ! इस ( अविद्या ) मलको त्याग कर निर्मल बनो ।

जेतवन

( चुल्ल ) सारी

२४४—सुजीवं अहिरीकेन काकसूरेन धंसिना ।

पक्खन्दिना पगम्भेन संकिलिट्ठेन जोवितं ॥१०॥

( सुजीवितं अहीकेण काकशूरेण ध्वंसिना ।

प्रस्कन्दिना प्रगल्भेन संक्लिष्टेन जीवितम् ॥१०॥ )

अनुवाद—( पापाचारके प्रति ) निर्लज्ज, कौए समान ( स्वार्थमें ) शूर, ( परहित-)विनाशी, पतित, उच्छृंखल और मलिन ( पुरुष )का जीवन सुखपूर्वक बीतता ( देखा जाता ) है ।

जेतवन

( चुल्ल ) सारी

२४५—हिरीमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना ।

अलीनेन'पगम्भेन सुद्धाजीवेन पत्तसता ॥११॥

( हीमता च दुर्जीवितं नित्यं शुचिगवेषिणा ।  
अलीनेनाऽप्रगल्भेन शुद्धाजीवेन पश्यता ॥११॥ )

अनुवाद—( पापाचारके प्रति ) लज्जावान्, नित्य ही पवित्रताका  
ख्याल रखने वाले, निशालस, अनुच्छृंखल, शुद्ध जीविका  
वाले सचेत( पुरुष )के जीवनको कठिनाईसं बीतते  
देखते हैं ।

जैतवन

पाँच सौ उपासक

२४६—यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति ।  
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति ॥१२॥  
( यः प्राणमतिपातयति मृषावादं च भाषते ।  
लोकेऽदत्तं आदत्ते परदारान्श्च गच्छति ॥१२॥ )

२४७—सुरामैरेयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।  
इधैवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥१३॥  
( सुरामैरेयपानं च यो नरोऽनुयुनक्ति ।  
इहैवमेष लोके मूलं खनत्यात्मनः ॥१३॥ )

२४८—एवं भो पुरिस । जानाहि पापधम्मा असञ्जता ।  
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ॥१४॥  
( एवं भो पुरुष ! जानीहि पापधर्माणोऽसंयतान् ।  
मा त्वां लोभोऽधर्मश्च चिरं दुःखाय रन्धेरन् ॥१४॥ )

अनुवाद—जो हिंसा करता है, झूठ बोलता है, लोकमें चोरी करता  
है (=बिना दियेको लेता है), परस्त्रीगमन करता है ।

जो पुरुष मद्यपानमे लग्न होता है, वह इस प्रकार इसी लोकमे अपनी जडको खोदता है। हे पुरुष ! पापियों असंयमियोंके वारेमे ऐसा जान, और मत तुझे लोभ, अधर्म चिरकाल तक दुःखमे राँधे।

जेतवन

तिस्स ( बालक )

२४६—ददन्ति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो ।

तत्थ यो मंकु भवति परेसं पानभोजने ।

न सो दिवा वा रत्ति वा समाधि अधिगच्छति ॥ १५ ॥

( ददाति वे यथाश्रद्धं यथाप्रसादनं जनः ।

तत्र यो मूको भवति परेषां पानभोजने ।

न स दिवा वा रात्रौवा समाधिमधिगच्छति ॥ १५ ॥ )

२५०—यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।

स वे दिवा वा रत्ति वा समाधि अधिगच्छति ॥ १६ ॥

( यस्य च तत् समुच्छिन्नं मूलघातं समुद्धतम् ।

स वै दिवा रात्रौ वा समाधि अधिगच्छति ॥ १६ ॥ )

अनुवाद—लोग अपनी अपनी श्रद्धा और प्रसन्नताके अनुसार दान देते हैं, वहाँ दूसरोके खाने पीनेमे जो ( असन्तोषके कारण ) मूक होता है; वह रात दिन ( कभी भी ) समाधानको नहीं प्राप्त करता । ( किन्तु ) जिसका वह जब मूलसे पूरी तरह उच्छिन्न हो गया, वह रात दिन (सर्वदा) समाधानको प्राप्त होता है ।

जेतवन

पाँच उपासक

२५१—नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो ।

नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥१७॥

( नास्ति रागसमोऽग्निः नाऽस्ति द्वेषसमो ग्राहः ।

नाऽस्ति मोहसमं जलं, नाऽस्ति तृष्णा समा नदी ॥१७॥ )

अनुवाद—रागके समान आग नहीं, द्वेषके समान ग्रह (=भूत, चुड़ैल) नहीं; मोहके समान जाल नहीं, तृष्णाके समान नदी नहीं ।

भदियनगर ( जातियावन )

मेण्डक ( श्रेष्ठी )

२५२—सुदस्सं वज्जमज्जेसं अत्तनो पन दुदसं ।

परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथामुसं ।

अत्तनो पन छादेति कलिं व कित्वा सठो ॥१८॥

( सुदर्शं वज्रमन्येषां आत्मनः पुनर्दुर्दर्शम् ।

परेषां हि स वज्रानि अवपुणाति यथानुषम् ।

आत्मनः पुनः छादयति कलिमिव कित्वात् शठः ॥१८॥ )

अनुवाद—दूसरेका दोष देखना आसान है, किन्तु अपना ( दोष ) देखना कठिन है, वह ( पुरुष ) दूसरोंके ही दोषोंको भुसकी भाँति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने ( दोषों )को वैसे ही ढाँकता है, जैसे शठ जुआरीने पासेको ।

जेतवन

उज्झानसञ्जी ( थेर )

२५३—परवज्जानुपत्तिस्स निच्चं उज्झानसञ्जिनो ।

आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा स आसवक्खया ॥१९॥

( परवद्याऽनुदर्शिनो नित्यं उद्ध्यानसंज्ञिनः ।

आस्रवास्तस्य बद्धन्ते आरादस आस्रवक्ष्यात् ॥१९॥ )

अनुवाद—दूसरेके दोषोंकी खोजमें रहनेवाले, सदा हाय हाय करने वाले ( पुरुष )के आस्रव ( =चित्तमल ) बढ़ते हैं, वह आस्रवोंके विनाशसे दूर हटा हुआ है ।

कुशीनगर

सुभद ( परिव्राजक )

२५४—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।

पप्पञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥२०॥

( आकाशे च पदं नाऽस्ति श्रमणो नाऽस्ति बहिः ।

प्रपञ्चाऽभिरताः प्रजा निप्पपञ्चास्तथागताः ॥२०॥ )

२५५—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।

सङ्खारासस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं ॥२१॥

( आकाशे च पदं नाऽस्ति श्रमणो नाऽस्ति बहिः ।

संस्काराः शाश्वता न सन्ति,

नाऽस्ति बुद्धानामिञ्जितम् ॥२१॥ )

अनुवाद—आकाशमें पद (—चिन्ह) नहीं, बाहरमें श्रमण ( =संन्यासी ) नहीं रहता, लोग प्रपञ्चमें लगे रहते हैं, ( किन्तु ) तथागत ( =बुद्ध ) प्रपञ्चरहित होते हैं ।

१८—मलवर्ग समाप्त

## १९—धम्मट्ठवग्गो

जेतवन

विनिच्छयमहामच्च (=जज )

२५६—न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थं सहसा नये ।

यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥१॥

( न तेन भवति धर्मस्थो येनार्थं सहसा नयेत् ।

यश्चाऽर्थं अनर्थं च उभौ निश्चिनुयात् पंडितः ॥१॥ )

२५७—असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।

धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥२॥

( असाहसेन धर्मेण समेन नयते परान् ।

धर्मेण गुप्तो मेधावी धर्मस्थ इत्युच्यते ॥२॥ )

अनुवाद—सहसा जो अर्थ (=कामकी वस्तु) को करता है, वह धर्ममें

अवस्थित नहीं कहा जाता, पंडितको चाहिये कि वह अर्थ,

अनर्थ दोनों को विचार ( करके ) करे ।

जेतवन

वज्जिय ( भिक्षु )

२५८—न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।  
 खेमो अवेरो अभयो पण्डितो'ति पवुच्चति ॥३॥  
 ( न तावता पंडितो भवति यावता बहु भाषते ।  
 क्षेमो अवरो अभयः पंडित इत्युच्यते ॥३॥ )

अनुवाद—बहुत भाषण करनेसे पंडित नहीं होता । जो क्षेमवान् अवैरी  
 और अभय होता है, वही पंडित कहा जाता है ।

जेतवन

एकुदान ( थेर )

२५९—न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति ।  
 यो च अप्पमि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति ।  
 स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥४॥  
 ( न तावता धर्मधरो यावता बहु भाषते ।  
 यश्चाल्पमपि श्रुत्वा धर्मं कायेन पश्यति ।  
 स वै धर्मधरो भवति यो धर्मं न प्रमाद्यति ॥४॥ )

अनुवाद—बहुत बोलनेसे धर्मधर (=धार्मिक ग्रंथोका ज्ञाता) नहीं  
 होता, जो थोड़ा भी सुनकर शरीरसे धर्मका आचरण करता  
 है, और जो धर्मसे असावधानी (=प्रमाद) नहीं करता,  
 वही धर्मधर है ।

जेतवन

लकुण्टक भदिय ( थेर )

२६०—न तेन थेरो होति येन'स्स पलितं सिर्रो ।  
 परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो'ति वुच्चति ॥५॥



( न तेन स्थविरो भवति येनाऽस्य पलितं शिरः ।

परिपक्वं वयस्तस्य मोघजीर्णं न्त्युच्यते ॥५॥ )

अनुवाद—शिरके ( बालके ) पकनेसे धे (=स्थविर, वृद्ध ) नहीं होता, उसकी आयु परिपक्व हो गई ( सही ), ( किन्तु ) वह व्यर्थका वृद्ध कहा जाता है ।

जेतवन

लकुण्टक भदिय ( थेर )

२६१—यस्मिं सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्जमो दमो ।

स वे कन्तमलो धीरो थेरो 'ति पवुच्चति ॥६॥

( यस्मिन् सत्यं च धर्मश्चाहिंसा संयमो दमः ।

स वै वान्तमलो धीरः स्थविर इत्युच्यते ॥६॥ )

अनुवाद—जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम हैं, वही विगतमल, धीर और स्थविर कहा जाता है ।

जेतवन

कितने ही भिक्षु

२६२—न वाक्करणमत्तेन वणपोक्खरताय वा ।

साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥७॥

( न वाक्करणमात्रेण वर्णपुष्कलतया वा ।

साधुरूपो नरो भवति ईर्षुको मत्सरी शठः ॥७॥ )

२६३—यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।

स कन्तदोसो मेधावी साधुरूपो 'ति वुच्चति ॥८॥

( यस्य चैतत् समुच्छिन्नं मूलघातं समुद्धतम् ।

स वान्तदोषो मेधावी साधुरूप इत्युच्यते ॥८॥ )

अनुवाद—( यदि वह ) ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ है; तो, वक्ता होने मात्रसे, सुन्दर रूप होनेसे, आदमी साधु-रूप नहीं होता है । जिसके यह जडमूलसे बिलकुल उच्छिन्न हो गये हैं; जो विगतदोष, मेधावी है, वही साधु-रूप कहा जाता है ।

जेतवन

हत्थक ( भिक्षु )

२६४—न मुण्डकेन समणो अब्वतो अलिकं भणं ।

इच्छालाभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥६॥

( न मुंडकेन श्रमणो ऽन्नतोऽलीकं भणन् ।

इच्छालाभसमापन्नः श्रमणः किं भविष्यति ॥९॥ )

२६५—यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्वसो ।

समित्ता हि पापानं समणो'ति पवुच्चति ॥१०॥

( यश्च शमयति पापानि अणूनि स्थूलानि सर्वशः ।

शमितत्वाद्धि पापानां श्रमण इत्युच्यते ॥१०॥ )

अनुवाद—जो ब्रतरहित, मिथ्याभाषी है, वह मुण्डित होने मात्र से श्रमण नहीं होता । इच्छा लाभसे भरा ( पुरुष ), क्या श्रमण होगा ? जो छोटे बड़े पापोंको सर्वथा शमन करनेवाला है; पापको शमित होनेके कारण वह समण (=श्रमण ) कहा जाता है ।

जेतवन

कोई ब्राह्मण

२६६—न तेन भिक्खू [सो] होति यावता भिक्खवे परं ।

विस्सं धम्मं समादाय भिक्खू होति न तावता ॥११॥

( न तावता भिक्षुः [स] भवति यावता भिक्षते परान् ।  
विश्वं धर्मं समादाय भिक्षुर्भवति न तावता ॥११॥ )

अनुवाद—दूसरोके पास जाकर भिक्षा माँगने मात्रसे भिक्षु नहीं होता,  
( जो ) यारे ( बुरे ) धर्मों (=कामों )को ग्रहण करता है  
( वह ) भिक्षु नहीं होता ।

जैतवन

कोई ब्राह्मण

२६७—यो'व पुञ्जञ्च पापञ्च वाहित्वा ब्रह्मचरियवा ।  
सङ्खाय लोके चरति स वै भिक्षू'ति वुच्चति ॥१२॥  
( य इह पुण्यं च पापं च वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।  
संख्याय लोके चरति स वै भिक्षुरित्युच्यते ॥१२॥ )

अनुवाद—जो यहाँ पुण्य और पापको छोड़ ब्रह्मचारी बन, ज्ञानके  
साथ लोकमें विचरता है, वह भिक्षु कहा जाता है ।

जैतवन

तीर्थिक

२६८—न मोनेन मुनी होति मुल्हरूपो अविदुसु ।  
यो च तुलं 'व पग्गय्ह वरमादाय पण्डितो ॥१३॥  
( न मोनेन मुनिर्भवति मूढरूपोऽविद्वान् ।  
यश्च तुलामिव प्रगृह्य वरमादाय पण्डितः ॥१३॥ )

२६९—पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनि ।  
यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥१४॥  
( पापानि परिवर्जयति स मुनिस्तेन स मुनिः ।  
यो मनुत उभौ लोकौ मुनिस्तेन प्रोच्यते ॥१४॥ )

अनुवाद—अविद्वान् आर नृक्षमान ( पुरुष, सिर्फ ) मान होनेसे मुनि नहीं होता, जो पंडित कि तुलाकी भाँति पकड़कर, उत्तम ( तत्त्व ) को ग्रहण कर, पापोंका परित्याग करता है, वह मुनि है, और उक्त प्रकारसे मुनि होता है। चूंकि वह दोनों लोकोंका मनन करता है, इसलिये वह मुनि कहा जाता है।

जैतवन

अरिय बाळिसिक

२७०—न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति ।

अहिंसा सम्बपाणानं अरियो'ति पवुच्चति ॥ १५ ॥

( न तेनाऽऽर्यो भवति येन प्राणान् हिनस्ति ।

अहिंसया सर्वपाणानां आर्य इति प्रोच्यते ॥ १५ ॥ )

अनुवाद—प्राणियोंको हनन करनेसे ( कोई ) आर्य नहीं होता, सभी प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे ( उसे ) आर्य कहा जाता है।

जतवन

बहुनमे शील आदि-युक्त भिक्षु

२७१—न शीलव्यतमत्तेन बाहुसच्चेन वा पन ।

अथवा समाधिलाभेन विविच्चसयनेन वा ॥ १६ ॥

( न शीलव्यतमात्रेण बाहुश्रुत्येन वा पुनः ।

अथवा समाधिलाभेन विविच्य शयनेन वा ॥ १६ ॥ )

२७२—कुसामि नेक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं ।

भिक्षू ! विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं ॥ १७ ॥

( स्पृशामि नैष्कर्म्यसुखं अपृथग्जनसेवितम् ।

भिक्षो ! विश्वासं मा पादोः अप्राप्त आस्रवक्षयम् ॥१७॥ )

अनुवाद—केवल शील ओर व्रतसे, बहुश्रुत होने ( मात्र )से, या ( केवल ) समाधिलाभसे, या एकान्तमें शयन करनेसे, पृथग्जन (=अज्ञ) जिसे नहीं सेवन कर सकते, उस नैष्कर्म्य (=निर्वाण)-सुखको मैं अनुभव नहीं कर रहा हूँ; हे भिक्षुओ ! जब तक आस्रवों (=चित्तमलो) का क्षय न हो जाये, जब तक रूप न बैठे रहो ।

१६—धर्मस्थवर्ग समाप्त

## २०—मगगवग्गो

जेतवन

पाँच सौ भिक्षु

२७३—मगगानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।

विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥१॥

( मार्गाणामष्टांगिकः श्रेष्ठः सत्त्यानां चत्वारि पदानि ।

विरागः श्रेष्ठो धर्माणां द्विपदानां च चक्षुष्मान् ॥१॥ )

२७४—एसो'व मग्गो नत्थ'ज्जो दप्पसनस्स विसुद्धिया ।

एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥२॥

( एष वो मार्गो नाऽस्त्यन्यो दर्शनस्य विशुद्धये ।

एतं हि यूयं प्रतिपद्यध्वं मारस्यैष प्रमोहनः ॥२॥ )

अनुवाद—मार्गोंमें अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्त्योमें चार पद (=चार आर्यसत्त्य) श्रेष्ठ हैं, धर्मोंमें वैराग्य श्रेष्ठ है, द्विपदों (=मनुष्यों)में चक्षुष्मान् (=ज्ञाननेत्रधारी, बुद्ध) श्रेष्ठ हैं। दर्शन(=ज्ञान)की विशुद्धिके लिये यही मार्ग है, दूसरा नहीं; ( भिक्षुओ ! ) इसीपर तुम आरुढ़ होओ, यही मारको मूर्च्छित करने वाला है ।

जेतवन

पाँच सौ भिक्षु

२७५—एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खत्सन्तं करिस्सथ ।

अक्खातो वे मया मग्गो अञ्जाय सल्लसन्थनं ॥३॥

( पतं हि गृयं प्रतिपन्ना दुःखस्यान्तं करिष्यथ ।

आख्यातो वै मया मार्ग आज्ञाय शल्य-संस्थानम् ॥३॥ )

२७६—तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।

पटिपन्ना पमोक्खन्ति ध्यायिनो मारवन्धना ॥४॥

( युष्माभिः कार्यं आतप्यं आख्यातारस्तथागताः ।

प्रतिपन्नाः प्रमोक्ष्यन्ते ध्यायिनो मारवन्धनात् ॥४॥ )

अनुवाद—इस ( मार्ग ) पर आरुढ़ हो तुम दुःखका अन्त कर सकोगे,  
 ( स्वयं ) जानकर ( राग आदिके विनाशमें ) शल्य  
 समान मार्गको मैंने उपदेश कर दिया । कार्यके लिए तुम्हें  
 उद्योग करना है, तथागतों ( = बुद्धों ) का कार्य उपदेश  
 कर देना है, ( तदनुसार मार्ग पर ) आरुढ़ हो, ध्यानमें रत  
 पुरुष ) मारके बन्धनमें मुक्त हो जायेंगे ।

जेतवन

पाँच सौ भिक्षु

[ अनित्य-लक्षणम् ]

२७७—सब्बे सङ्खारा अनिच्चा 'ति यदा पज्जाय पस्सति ।

अथ निव्विन्दति दुक्खे, एस मग्गो विमुद्धिया ॥५॥

( सर्वे संस्कारा अनित्या इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।

अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्ध्ये ॥५॥ )

अनुवाद—सभी संस्कृत ( =कृत, निर्मित, बनी ) चीज़ें अनिश्चय हैं, यह जब प्रज्ञासे देखता है, तब सभी दुःखोंसे निर्वेद ( =विराग )को प्राप्त होता है, यही मार्ग ( चित्त- ) शुद्धिका है ।

[ दुःख-लक्षणम् ]

२७८—सब्बे सङ्खारा दुक्खा 'ति यदा पञ्जाय पस्सति ।  
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ६ ॥  
( सर्वे संस्कारा दुःखा इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।  
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्धये ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—सभी संस्कृत ( चीज़ें ) दुःखमय हैं ० ।

[ अनात्म-लक्षणम् ]

२७९—सब्बे धम्मा अनत्ता 'ति यदा पञ्जाय पस्सति ।  
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ७ ॥  
( सर्वे धर्मा अनात्मान इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।  
अथ निर्विन्दति दुःखानि एष मार्गो विशुद्धये ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—सभी धर्म ( =पदार्थ ) विना आत्माके हैं, ० ।

जेतवन

( योगी ) तिस्स ( थेर )

२८०—उट्ठानकालमिह अनुट्ठहानो युवा बली आलमियं उपेतो ।  
संसन्न सङ्कप्पमनो कुसीतो पञ्जाय मग्गं अलसो न विन्दति ॥ ८ ॥



( उत्थानकालेऽनुस्तिष्ठन् युवा दली आलस्यमुपेतः ।

संसन्न-संकल्प-मनाः कुसीदः

प्रज्ञया मार्गं अलसो न विन्दति ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—जो उठान (=उद्योग) के समय उठान न करनेवाला, युवा और दली होकर ( भी ) आलस्यमे युक्त होता है, मनके संकल्पोंको जिसने गिरा दिया है, और जो कुसीदी (=दीर्घसूत्री) है, वह आलसी ( पुरुष ) प्रज्ञाके मार्गको नहीं प्राप्त कर सकता ।

राजगृह ( वेणुवन )

( शूकर-प्रेत )

२८१-वाचाऽनुरक्षी मनसा सुसंयुतो

कायेन च अकुशलं न कयिरा ।

एते तयो कम्मपथे विनोधये

आराधये मग्गमिप्पिप्पवेदितं ॥ ६ ॥

( वाचाऽनुरक्षी मनसा सुसंयुतः

कायेन चाऽकुशलं न कुर्यात् ।

एतान् त्रीन् कर्मस्थान् विशोधयेत्,

आराधयेत् मार्गं ऋषिप्रवेदितम् ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—जो वाणीकी रक्षा करनेवाला, मनसे संयमी रहे, तथा कायासे पाप न करे; इन ( मन, वचन, काय ) तीनों कर्मपथोंकी शुद्धि करे, और ऋषि (=बुद्ध) के जतलाये धर्मका सेवन करे ।

जेतवन

पोठिल ( थेर )

२८२—योगा वै जायती भूरि अयोगा भूरिसङ्खयो ।

एतं द्वेधापथं जत्त्वा भवाय विभवाय च ।

तथ'त्तानं निवेशेय्य यथा भूरि पबद्धाति ॥ १० ॥

( योगाद् वै जायते भूरि अयोगाद् भूरिसंक्षयः ।

एतं द्वेधापथं ज्ञात्वा भवाय विभवाय च ।

तथाऽऽत्मानं निवेशयेद् यथा भूरि प्रवर्धते ॥ १० ॥ )

अनुवाद—( मनके ) योग(=संयोग )से भूरि ( =ज्ञान ) उत्पन्न होता है, अयोगमे भूरिका क्षय होता है । लाभ और विनाशके इन दो प्रकारके भागोंको जानकर, अपनेको इस प्रकार रखे, जिसमे कि भूरिकी वृद्धि होवे ।

जेतवन

कोई वृद्ध भिक्षु

२८३—वनं छिन्द्य मा स्खवं वनतो जायती भयं ।

छेत्त्वा वनञ्च वनथञ्च निब्बाना होय भिक्खवो ! ॥ ११ ॥

( वनं छिन्धि मा वृक्षं वनतो जायते भयम् ।

छित्त्वा वनं च वनथं च निर्वाणा भवत भिक्षवः ॥ ११ ॥

२८४—यावंहि वनथो न छिज्जति अनुमत्तोपि नरस्स नारिषु ।

पटिबद्धमनो नु तावसो वच्छो खीरपको 'व मातरि ॥ १२ ॥

( यावद्धि वनथो न छिद्यतेऽणुमात्रोऽपि नरस्य नारीषु ।

प्रतिबद्धमनाः नु तावत् स वत्सः क्षीरप इव मातरि ॥ १२ ॥ )

अनुवाद—वनको काटो, वृक्षको मत, वनसे भय उत्पन्न होता है, भिक्षुओ ! वन और झाड़ीको काटकर निर्वाणको प्राप्त हो जाओ । जबतक अणुमात्र भी स्त्रीमें पुरुषकी कामना अखंडित रहती है, तबतक दूध पीनेवाला बछड़ा जैसे मातामें आवद्ध रहता है, ( वैसे ही वह पुरुष बंधा रहता है ) ।

जेतवन

सुवण्णकार ( धेर )

२८५—उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं 'व पाणिना ।

सन्तिमग्गमेव बृहय निब्बानं सुगतेन देसितं ॥१३॥

( उच्छिन्धि स्नेहमात्मनः कुमुदं शारदिकमिव पाणिना ।  
शान्तिमार्गमेव बृहय निर्वाणं सुगतेन देशितम् ॥१३॥ )

अनुवाद—हाथसे शरद् ( कतु ) के कुमुदकी भाँति, आत्मस्नेहको उच्छिन्न कर डालो, सुगत (= बुद्ध ) द्वारा उपदिष्ट ( इस ) शान्तिमार्ग निर्वाणका आश्रय लो ।

जेतवन

( महाधनी बाणिक )

२८६—इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हसु ।

इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥१४॥

( इह वर्षासु वसिष्यामि इह हेमन्तग्रीष्मयोः ।

इति बालो विचिन्तयति, अन्तरायं न बुध्यते ॥१४॥ )

अनुवाद—यहाँ वर्षामें वसूँगा, यहाँ हेमन्त और ग्रीष्ममें ( वसूँगा )  
—मूढ़ इस प्रकार सोचता है, ( और ) अन्तराय (= विघ्न ) को नहीं बुझता ।

जेतवन

किसा गोतमी ( थेरी )

२८७—तं पुत्तपसुसम्मत्तं व्यासत्तमनसं नरं ।

सुत्तं गामं महोघो 'व मच्चू आदाय गच्छति ॥ १५ ॥

( तं पुत्र-पशु-सम्मत्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।

सुत्तं ग्रामं महौघ इव मृत्युरादाय गच्छति ॥ १५ ॥ )

अनुवाद—सोये गाँवको जैसे बड़ी बाढ़ ( बहा लेजाये ), वैसही पुत्र और पशुमें लिप्त आसक्त (-चित्त ) पुरुषको मौत ले जाती है ।

जेतवन

पटाचारा ( थेरी )

२८८—न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि बन्धवा ।

अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि जातिषु ताणता ॥ १६ ॥

( न सन्ति पुत्रास्त्राणाय न पिता नाऽपि बान्धवाः ।

अन्तकेनाऽधिपन्नस्य नाऽस्ति जातिषु त्राणता ॥ १६ ॥ )

अनुवाद—पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता, न बन्धुलोग ही । जब मृत्यु पकड़ता है, तो जातिवाले रक्षक नहीं हो सकते ।

२८९—एतमत्यवसं अत्त्वा पण्डितो सीलसंवृतो ।

निब्बाण-गमनं मगं खिप्पमेव विसोधये ॥ १७ ॥

( एतमर्थवशं ज्ञात्वा पंडितः शीलसंवृतः ।

निर्वाणगमनं मार्गं क्षिप्रमेव विशोधयेत् ॥ १७ ॥ )

अनुवाद—इस बातको जानकर पंडित ( नर ) शीलवान् हो, निर्वाण को ओर लेजानेवाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे ।

२०—मार्गवर्ग समाप्त

## २१—पकिरणकवग्गो

राजगृह ( वेणुवन )

गङ्गावरोहण

२६०—मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं ।

चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं ॥१॥

( मात्रासुखपरित्यागात् पश्येच्चेद् विपुलं सुखम् ।

त्यजेन्मात्रासुखं धीरः संपश्यन् विपुलं सुखम् ॥१॥ )

अनुवाद—थोड़ेसे सुखके परित्यागसे यदि बुद्धिमान् विपुल सुख  
( का लाभ ) देखे, तो विपुल सुखका ख्याल करके थोड़ेसे  
सुखको छोड़ दे ।

जेतवन

कोई पुरुष

२६१—परदुःखोपादानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।

वेरसंसगसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ॥२॥

( परदुःखोपादानेन य आत्मनः सुखमिच्छति ।

वेरसंसर्गसंसृष्टो वैरात् स न प्रमुच्यते ॥२॥ )

[ १२९ ]

अनुवाद—दूसरेको दुःख देकर जो अपने लिये सुख चाहता है,  
वैरके संसर्गमें पड़कर, वह वैरसे नहीं छूटता ।

भद्वियनगर ( जातियावन )

भद्विय ( भिक्षु )

२६२—यं हि किञ्चं तदपविद्धं अकिञ्चं पन कयिरति ।

उत्तलानं पमत्तानं तेषां वड्ढन्ति आसवा ॥३॥

( यद्धि कृत्यं तद् अपविद्धं, अकृत्यं पुनः कुर्युः ।

उन्मलानां प्रमत्तानां तेषां वड्ढन्ति आसवाः ॥३॥ )

२६३—येसञ्च सुसमारब्धा निच्चं कायगता सति ।

अविच्चन्ते न सेवन्ति किञ्चे सातच्चकारिणो ।

सतानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥४॥

( येषाञ्च सुसमारब्धा नित्यं कायगता स्मृतिः ।

अकृत्यं ते न सेवन्ते कृत्ये सातत्यकारिणः ।

स्मरतां\* सम्प्रजानानां अस्तं गच्छन्त्यासवाः ॥४॥ )

अनुवाद—जो कर्तव्य है, उसे (तो वह) छोड़ता है, जो अकर्तव्य है उसे करता है, ऐसे बड़े मलवाले प्रमादियोंके आसव (=चित्तमल) बढ़ते हैं । जिन्हें कायामे ( क्षणभंगुरता, मलिनता आदि दोष सम्बन्धी ) स्मृति तय्यार रहती है, वह अकर्तव्यको नहीं करते, और कर्तव्यके निरन्तर करनेवाले होते हैं । जो स्मृति, और सम्प्रजन्य (=सचेतपन)को रखनेवाले होते हैं, उनके आसव अस्त हो जाते हैं ।

जेतवन

लकुण्डक भद्विय ( थेर )

२६४—मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये ।

रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥५॥

( मातरं पितरं हत्वा राजानौ द्वौ च क्षत्रियाँ ।

राष्ट्रं साऽनुचरं हत्वाऽनघो याति ब्राह्मणः ॥५॥ )

अनुवाद—माता (=नृणा ), पिता (=अहकार ), दो क्षत्रिय राजाओं [= (१) आत्मा, ब्रह्म प्रकृति आदिकी नित्यताका सिद्धान्त, (२) मरणान्त जीवन मानना या जडवाद ], अनुचर(=राग )सहित राष्ट्र (=रूप, विज्ञान आदि संसारके उपादान पदार्थ )को मार कर ब्राह्मण (=ज्ञानी ) निष्पाप होता है ।

२६५—मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये ।

वय्यघपञ्चमं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥६॥

( मातरं पितरं हत्वा राजानौ द्वौ च श्रोत्रियाँ ।

व्याघ्रपञ्चमं हत्वाऽनघो याति ब्राह्मणः ॥६॥ )

अनुवाद—माता, पिता, दो श्रोत्रिय राजाओं [= (१) नित्यतावाद, (२) जडवाद ] और पाँचवें व्याघ्र (=पाँच ज्ञानके आवरणों )को मारकर, ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है ।

राजगृह ( वेणुवन )

( दारुसाकटिकपुत्त )

२६६—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसाक्का ।

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥७॥

( सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः ।  
येषां दिवा च रात्रौ च निर्य्यं बुद्धगता स्मृतिः ॥७॥ )

२६७—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।  
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥८॥

( सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः ।  
येषां दिवा च रात्रौ च निर्य्यं धर्मगता स्मृतिः ॥८॥ )

२६८—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।  
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं सङ्खगता सति ॥९॥

( सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः ।  
येषां दिवा च रात्रौ च निर्य्यं संघगता स्मृतिः ॥९॥ )

अनुवाद—जिनको दिन-रात बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है; वह गौतम( बुद्ध )के शिष्य खूब जागरूक रहते हैं । जिनको दिन-रात धर्म-विषयक स्मृति बनी रहती है ० । जिनको दिन-रात संघ-विषयक स्मृति बनी रहती है ० ।

२६९—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।  
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥१०॥  
(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते० । ० निर्य्यं कायगता स्मृतिः ॥१०॥)

३००—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।  
येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥११॥  
( सुप्रबुद्धं० । ० अहिंसायां रतं मनः ॥११॥ )



३०१—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥ १२ ॥

( सुप्रबुद्धं० । ० भावनायां रतं मनः ॥ १२ ॥ )

अनुवाद—जिनको दिन-रात कायविषयक स्मृति बनी रहती है० ।

जिनका मन दिन-रात अहिसामे रत रहता है० । जिनका  
मन दिन-रात भावना (=चिन्त) में रत रहता है० ।

वैशाली ( महावन )

बज्जिपुत्तक ( भिक्षु )

३०२—दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं दुरावासा घरा दुखा ।

दुक्खोऽसमानसंवासो दुक्खानुपतितद्वगू ।

तस्मा न च अद्वगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥ १३ ॥

( दुप्पब्रज्यां दुरभिरमं दुरावासं गृहं दुःखम् ।

दुःखोऽसमानसंवासो दुखाऽनुपतितोऽध्वगः ।

तस्मान्न चाऽध्वगः स्यान्न च दुःखाऽनुपतितः स्यात् ॥ १३ ॥ )

अनुवाद—कष्टपूर्ण प्रब्रज्या (= संन्यास ) में रत होना दुष्कर है, न

रहने योग्य घर दुःखद है, अपमानके साथ बसना दुःखद  
है, मार्गका बटोही होना दुःखद है, इसलिये मार्गका बटोही  
न बने, न दुःखमें पतित होवे ।

जेतवन

चित्त ( गृहपति )

३०३—सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसम्पितो ।

यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥

( श्रद्धः शीलेन सज्जन्तो यशोभोगसमर्पितः ।

यं यं प्रदेशं भजते तत्र तत्रैव पूजितः ॥१४॥ )

अनुवाद—श्रद्धावान्, शीलवान् यश और भोगमें युक्त ( पुरुष )  
जिस जिस स्थानमें जाता है, वहीं वहीं पूजित होता है ।

जेतवन

( चुल्ल ) सुभदा

३०४—दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो 'व पञ्चता ।

असन्तेत्य न दिस्सन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ॥१५॥

( दूरे सन्तः प्रकाशन्ते हिमवन्त इव पर्वताः ।

असन्तोऽत्र न दृश्यन्ते रात्रिक्षिप्ता यथा शराः ॥१५॥ )

अनुवाद—सन्त ( जन ) दूर होनेपर भी हिमालय पर्वत ( की )  
धवल चोटियोंकी भाँति प्रकाशते हैं, और असन्त यही  
( पासमें भी ) होनेपर, रातमें फेंके चाणकी भाँति  
नहीं दिखलाई देते ।

जेतवन

अकेले विहरनेवाले ( येर )

३०५—एकासनं एकसेय्यं एकोचरमतन्द्रितो ।

एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया ॥१६॥

( एकासन एकशय्य एकश्चरन्नतन्द्रितः ।

एको दमयन्नात्मानं वनान्ते रतः स्यात् ॥१६॥ )

अनुवाद—एकही आसन रखनेवाला, एक शय्या रखनेवाला, अकेला  
विचरनेवाला ( वन ), आलस्यरहित हो, अपनेको दमन  
कर अकेला ही वनान्तमें रमण करे ।

२१—प्रकीर्णवर्ग समाप्त

## २२—निरयवग्गो

जेतवन

सुन्दरी ( परित्राजिका )

३०६—अभूतवादी निरयं उपेति यो वापि

कत्त्वा ' न करोमी ' ति चाह ।

उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति

निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥१॥

( अभूतवादी निरयमुपेति,

यो वाऽपि कृत्वा ' न करोमी ' ति चाह ।

उभावपि तौ प्रेत्य समा भवतो

निहीनकमाणौ मनुजौः परत्र ॥१॥

अनुवाद—असत्यवादी नरकमे जाते हैं, और वह भी जो कि करके 'नहीं किया'—कहते हैं । दोनों ही प्रकारके नीचकर्म करने वाले मनुष्य मरकर समान होते हैं ।

राजगृह ( वेणुवन )

( पाप फलानुभवा प्राणी )

३०७—कासाक्कण्ठा बहवो पापधम्मा असञ्जता ।

पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उप्पज्जरे ॥२॥

( काषायकंठा बहवः पापधर्मा असंयताः ।

पापाः पापैः कर्मभिर्निरयं त उत्पद्यन्ते ॥२॥ )

अनुवाद—कंठमे काषाय(-वस्त्र) डाले कितने ही पापी असंयमी हैं; जो पापी कि ( अपने ) पाप कर्मोंसे नरकमें उत्पन्न होते हैं ।

वैशाली

( वग्गुमुदातीरवासी भिक्षु )

३०८—सेय्यो अयोगोलो मुत्तो ततो अग्गिसिखूपमो ।

यञ्चे भुज्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्जतो ॥३॥

( श्रेयान् अयोगोलो भुक्तस्तप्तोऽग्निशिखोपमः ।

यच्चेद् भुञ्जीत दुःशीलो राष्ट्रपिण्डं असंयतः ॥३॥ )

अनुवाद—असंयमी दुराचारी हो राष्ट्रका पिण्ड [ =देशका अन्न ] खानेसे अग्नि-शिखाके समान तप्त लोहेका गोला खाना उत्तम है ।

जतवन

खेम ( श्रेष्ठीपुत्र )

३०९—चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो आपज्जती परदारूपसेवी ।

अपुञ्जलाभं न निकामसेय्यं निन्दं ततोयं निरयं चतुर्थं ॥ ४ ॥

( चत्वारि स्थानानि नरः प्रमत्त आपद्यते परदारोपसेवी ।

अपुण्यलाभं न निकामशय्यां

निन्दां तृतीयां निरयं चतुर्थम् ॥ ४ ॥ )

३१०—अपुञ्जलाभो च गती च पापिका,

भीतस्स भीताय रती च थोक्किा ।

राजा च दण्डं गुरुकं पणोति

तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ ५ ॥

( अपुण्यलाभश्च गतिश्च पापिका,

भीतस्य भीतया रतिश्च स्तोत्रिका ।

राजा च दंडं गुरुकं प्रणयति

तस्मात् नरो परदारान् न सेवेत् ॥ ५ ॥ )

अनुवाद—प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्यकी चार गतियाँ हैं—अपुण्य-  
का लाभ, सुखसे न निद्रा, तीसरे निन्दा, और चौथे नरक ।  
(अथवा) अपुण्यलाभ, बुरी गति, भयभीत ( पुरुष ) की,  
भयभीत ( स्त्री ) परे अत्यल्प रति, और राजाका भारी दंड  
देना; इसलिये मनुष्यको परस्त्रीगमन न करना चाहिये ।

जेतवन

कटुभाषी ( भिक्षु )

३११—कुसो यथा दुग्गहीतो हत्यमेवानुक्कन्तति ।

सामञ्जं दुप्परामट्ठं निरयायुउपकड्ढति ॥ ६ ॥

( कुशो यथा दुर्गृहीतो हस्तमेवाऽनुक्कन्तति ।

श्रामण्यं दुप्परामट्ठं निरयायोपकर्षति ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—जैसे ठीकसे न पकड़नेसे कुश हाथको ही छेदता है, ( इसी  
प्रकार ) श्रमणपन (=संन्यास ) ठीकसे ग्रहण न करनेपर  
नरकमें ले जाता है ।

३१२—यं किञ्चि सिधिलं कम्मं सङ्किलिट्ठं च यं वत्तं ।

सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं ॥ ७ ॥

( यत् किञ्चित् शिथिलं कर्म संक्लिष्टं च यद् व्रतम् ।  
संकृच्छ्रं ब्रह्मचर्यं न तद् भवति महत्फलम् ॥ ७ ॥ )

अनुवाद—जो कर्म कि शिथिल है, जो व्रत कि क्लेश (=मल) -युक्त है, और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है, वह महाफल (दायक) नहीं होता ।

३१३—कयिरञ्चे कयिराथेनं दृष्टहेमेनं परक्रमे ।  
सिथिलो हि परिव्राजो भिय्यो आकिरते रजं ॥ ८ ॥

( कुर्याच्चेत् कुर्वीतैतद् दृढमेतत् पराक्रमेत् ।  
शिथिलो हि परिव्राजको भूय आकिरते रजः ॥ ८ ॥ )

अनुवाद—यदि ( प्रव्रज्या कर्म ) करना है, तो उसे करे, उससे दृढ पराक्रमके साथ लग जावे; ढीला ढाला परिव्राजक (= संन्यासी ) अधिक मल विखेरना है ।

जेतवन

( कोई इंध्यालि स्त्री )

३१४—अकृतं दुष्कृतं सेय्यो पच्छा तपति दुष्कृतं ।  
कतञ्च सुकृतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥ ९ ॥

( अकृतं दुष्कृतं श्रेयः पश्चात् तपति दुष्कृतम् ।  
कृतं च सुकृतं श्रेयो यत् कृत्वा नानुतप्प्यते ॥ ९ ॥ )

अनुवाद—दुष्कृत (=पाप) का न करना श्रेष्ठ है, दुष्कृत करनेवाला पीछे अनुताप करता है; सुकृतका करना श्रेष्ठ है, जिसको करके ( मनुष्य ) अनुताप नहीं करता ।

जितवन

बहुतसे भिक्षु

३१५—नगरं यथा पञ्चन्तं गुप्तं सन्तरवाहिरं ।

एवं गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपच्चगा ।

खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता ॥१०॥

( नगरं यथा प्रत्यन्तं गुप्तं सान्तर्वाह्यम् ।

एवं गोपयेदात्मानं क्षणं वे मा उपातिगाः ।

क्षणाऽतीता हि शोचन्ति निरये समर्पिताः ॥१०॥ )

अनुवाद—जैसे सामान्तका नगर ( =गढ़ ) भीतर बाहरसे खूब रक्षित होता है, इसी प्रकार अपनेको रक्षित रखवे, क्षण भर भी न छोड़े; क्षण चूक जानेपर नरकमें पड़कर शोक करना पड़ता है ।

जितवन

( जैनसाधु )

३१६—अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे ।

मिच्छादिट्ठसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ ११॥

( अलज्जिता ये लज्जन्ते लज्जिता ये न लज्जन्ते ।

मिथ्यादृष्टि समादानाः सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥११॥ )

अनुवाद—अलज्जान ( के काम )में जो लज्जा करते हैं, और लज्जा ( के काम )में जो लज्जा नहीं करते, वह झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गतिको प्राप्त होते हैं ।

३१७—अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो ।

मिच्छादिट्ठसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥१२॥

( अभये च भयदर्शिनो भये चाऽभयदर्शिनः ।

मिथ्यादृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥१२॥ )

अनुवाद—भयरहित ( काम ) में जो भय देखते हैं, और भय ( के काम ) में भयको नहीं देखते, वह झूठी धारणावाले० ।

जेतवन

( तीर्थिक-शिष्य )

३१८—अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चावज्जदस्सिनो ।

मिच्छादिट्ठि० ॥१३॥

( अवद्ये वद्यमतयो वद्ये चाऽवद्यदर्शिनः ।

मिथ्यादृष्टि० ॥१३॥ )

अनुवाद—जो अदोषमें दोषबुद्धि रखनेवाले हैं, ( और ) दोषमें अदोष दृष्टि रखनेवाले, वह झूठी धारणावाले० ।

३१९—वज्जश्च वज्जतो अत्वा अवज्जश्च अवज्जतो ।

सग्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥

( वद्यं\* च वद्यतो ज्ञात्वाऽवद्यं चावद्यतः ।

सम्यग्दृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥ )

अनुवाद—दोषको दोष जानकर और अदोषको अदोष जानकर, ठीक धारणावाले प्राणी सुगतिको प्राप्त होते हैं ।

२२—निरयवर्ग समाप्त



## २३—नागवग्गो

जेतवन

आनन्द ( थेर )

३२०—अहं नागो'व सङ्गामे चापतो पतितं सरं ।

अतिवाक्यं तितिक्खस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥ १ ॥

( अहं नाग इव संग्रामे चापतः पतितं शरम् ।

अतिवाक्यं तितिक्षिप्ये, दुःशीला हि बहुजनाः ॥१॥ )

अनुवाद—जैसे युद्धमे हाथी धनुषपे गिरे शरको ( सहन करता है )

वैसेही मैं कटुवाक्योको सहन करूँगा; ( संसारमें तो )

दुःशील आदमी ही अधिक हैं ।

३२१—दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति ।

दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु यो'तिवाक्यं तितिक्खति ॥ २ ॥

( दान्तं नयन्ति समितिं दान्तं राजाऽभिरूहति ।

दान्तः श्रेष्ठो मनुष्येषु योऽतिवाक्यं तितिक्षते ॥२॥ )

अनुवाद—दान्त (=शिक्षित ) ( हाथी )को युद्धमें ले जाते हैं,

दान्तपर राजा चढ़ता है, मनुष्योंमें भी दान्त (=सहनशील)  
श्रेष्ठ है, जो कि कटुयाक्योंको सहन करता है ।

३२२—वरं अस्सतरा दन्ता आजानाया च सिन्धवा ।

कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ॥३॥

( वरमश्वतरा दान्ता आजानोयाश्च सिन्धवः ।

कुंजराश्च महानागा आत्मदान्तस्ततो वरम् ॥३॥ )

अनुवाद—खच्चर, उत्तम खेतके सिन्धी घोड़े, और महानाग हाथी  
दान्त (=शिक्षित) होनेपर श्रेष्ठ हैं, और अपने को दमन  
किया ( पुरुष ) उनमें भी श्रेष्ठ है ।

जेतवन

( भूतपूर्व महावत भिक्षु )

३२३—नहि एतेहि यानेहि गच्छेय्य अगतं दिसं ।

यथाऽत्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥४॥

( नहि एतैर्यानिः गच्छेदगतां दिशम् ।

यथा ऽऽत्मना सुदान्तेन दान्तो दान्तेन गच्छति ॥४॥ )

अनुवाद—इन ( हाथी, घोड़े आदि ) यानोंसे, बिना गई दिशा  
वाले (निर्वाण)की ओर नहीं जाया जा सकता, खयमी पुरुष  
अपनेको संयम कर संयत ( इन्द्रियों )के साथ ( वहाँ )  
पहुँच सकता है ।

जेतवन

( परिजिण्ण ब्राह्मणपुत्त )

३२४—धनपालको नाम कुञ्जरो ऋक्कप्पभेदनो दुत्तिवारयो ।

बद्धो कवलं न मुञ्जति सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥५॥

( धनपालको नाम कुंजरो कटकप्रभेदनो दुर्निवार्यः ।

बद्धः कवलं न भुंक्ते, स्मरति नागवनं कुंजरः ॥५॥ )

अनुवाद—सेनाको तितर वितर करने वाला, दुर्धर्ष धनपालक नामक हाथी, ( आज ) बन्धनमें पड़ जाने पर कवल नहीं खाता, और ( अपने ) हाथियोंके जगलको स्मरण करता है ।

जेतवन

पेमेनदी ( कोसलराज )

३२५—मिद्धो यदा होति महग्घसो च निद्रायिता सप्परिवर्त्तसायी ।

महावराहो 'व निवापपुट्ठो पुनप्पुनं गम्भमुपेति मन्दो ॥६॥

( मृद्धो यदा भवति महाग्रसश्च निद्रायितः सपरिवर्त्तसायी ।

महावराह इव निवाप-पुष्टः पुनः पुनः गर्भमुपैति मन्दः ॥६॥ )

अनुवाद—जो ( पुरुष ) आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल बदल सोने वाला, तथा दाना देकर पले मोटे सूअर की भाँति, होता है; वह मन्द बार बार गर्भमें पड़ता है ।

जेतवन

( सामणेरा )

३२६—इदं पुरं चित्तमचारि चारिकं

येनिच्छकं यत्थ कामं यथासुखं ।

तदज्ज 'हं निग्गहेस्सामि योनिसो

हत्थिप्पभित्तं विय अङ्कुसग्गहो ॥७॥

( इदं पुरा चित्तमचरत् चारिकां

यथेच्छं यथाकामं यथासुखम् ।

तदद्याऽहं निग्रहीष्यामि योनिशो

हस्तिनं प्रभिन्नमिवाङ्कुशग्राहः ॥७॥ )

अनुवाद—यह ( मेरा ) चित्त पहिले यथेच्छ=यथाकाम, जैसे सुख मालूम हुआ वैसे विचरनेवाला था; सो आज महावत् जैसे मतवाले हाथीको ( पकड़ता है, वैसे ) मैं उसे जड़से पकड़ूँगा ।

जैतवन

कोसलराजका पावेय्यक नामक हाथी

३२७—अप्रमादरता होथ स-चित्तमनुरक्खथ ।

दुग्गा उद्धरथ'त्तानं पङ्के सत्तो'वकुञ्जरो ॥८॥

( अप्रमादरता भवत स्वचित्तमनुरक्षत ।

दुर्गादुद्धरताऽऽत्मानं पङ्के सक्त इव कुञ्जरः ॥८॥ )

अनुवाद—अप्रमाद (=सावधानता )मे रत होओ, अपने मनकी रक्षा करो, पङ्कमे फँसे हाथीकी तरह (राग आदिमें फँसे) अपने को ऊपर निकालो ।

पारिलेय्यक

बहुतसे भिक्षु

३२८—सचे लभेय निपक्कं सहायं

सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं ।

अभिभूय्य सब्बानि परिस्सयानि

चरेय्य तेन'त्तमनो सर्तामा ॥९॥

( स चेत् लभेत निपक्कं सहायं

सार्द्धं चरन्तं साधुविहारिणं धीरम् ।

अभिभूय सर्वान् परिश्रयान्

चरेत् तेनाऽऽत्तमनाः स्मृतिमान् ॥९॥ )]

अनुवाद—यदि परिपक्व (— बुद्धि ) बुद्धिमान् साथमे विहरनेवाला  
 (= शिष्य ) सहचर मित्र मिले, तो सभी परिश्रयों  
 (= विघ्नों)को हटाकर सचेत प्रसन्नचित्त हो उसके साथ  
 विहार करे ।

३२६—नो चे लभेय निपक्कं सहायं

सद्धिं चरं साधुविहारिधोरं ।

राजा 'व रट्ठं विजितं प्रहाय

एको चरे मातङ्ग 'रज्जेव नागो ॥१०॥

( न चेत् लभेत निपक्कं सहायं

सार्द्धं चरन्तं साधुविहारिणं धीरम् ।

राजेव राष्ट्रं विजितं प्रहाय,

एकश्चरेत् मातङ्गोऽरण्य इव नागः ॥१०॥ )

अनुवाद—यदि परिपक्व, बुद्धिमान् साथमे विहरनेवाला सहचर  
 मित्र न मिले, तो राजाकी भौति पराजित राष्ट्रको छोड़  
 गजराज हाथीकी तरह अकेला विचरे ।

३३०—एकस्स चरितं सेय्यो नत्थि बाले सहायिता ।

एको चरं न च पापानि कयिरा

अप्पोत्सुको मातङ्ग 'रज्जे'व नागो ॥११॥

( एकस्य चरितं श्रेयो नाऽस्ति बाले सहायिता ।

एकश्चरेत् न च पापानि कुर्याद्

अल्पोत्सुको मातङ्गोऽरण्य इव नागः ॥११॥ )

अनुवाद—अकेला विचरना उत्तम है, ( किन्तु ) मूढ़की मित्रता अच्छी नहीं, मार्तगराज हाथीकी भाँति अनासक्त हो अकेला विचरे और पाप न करे ।

हिमवत्-प्रदेश

मार

३३१—अत्यमिह जातमिह सुखा सहाया

तुट्ठी सुखा या इतरीतरेण ।

पुञ्जं सुखं जीवितसङ्खयमिह

सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहाणं ॥ १२ ॥

( अर्थे जाते सुखाः सहायाः, तुष्टिः सुखा येतरेतरेण ।

पुण्यं सुखं जीवितसंक्षये

सर्वस्य दुःखस्य सुखं प्रहाणम् ॥ १२ ॥ )

अनुवाद—काम पडनेपर मित्र सुखद ( लगते हैं ), परस्पर सन्तोष हो ( यह भो ) सुखद ( वस्तु ) है, जीवनके क्षय होने पर ( किया हुआ ) पुण्य सुखद ( होता है ); सारे दुःखोंका विनाश ( =अर्हत् होना ) ( यह सबसे अधिक ) सुखद है ।

३३२—सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पत्तेय्यता सुखा ।

सुखा सामञ्जता लोके अथो ब्रह्मञ्जता सुखा ॥ १३ ॥

( सुखा मात्रीयता लोकेऽथ पित्रीयता सुखा ।

सुखा श्रमणता लोकेऽथ ब्राह्मणता सुखा ॥ १३ ॥ )

अनुवाद—लोकमें माताकी सेवा सुखकर है, और पिताकी सेवा

( भी ) सुखकर है, श्रमणभाव ( =संन्यास ) लोकमें सुखकर है, और ब्राह्मणपन ( =निष्पाप होना ) सुखकर है ।

३३३—सुखं याव जरा शीलं सुखा श्रद्धा प्रतिष्ठिता ।

सुखो पञ्चाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥ १४ ॥

( सुखं यावद् जरां शीलं सुखा श्रद्धा प्रतिष्ठिता ।

सुखः प्रज्ञायाः प्रतिलाभः पापानां अकरणं सुखम् ॥ १४ ॥)

अनुवाद—बुढ़ापेतक आचारका पालन करना सुखकर है, और स्थिर

श्रद्धा ( सत्यमे विश्वास ) सुखकर है, प्रज्ञाका लाभ सुख-  
कर है, और पापोंका न करना सुखकर है ।

२३—नागवर्ग समाप्त

## २४ तराहावग्गो

जेतवन

कापिलमच्छ

३३४—मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा बड्ढति मालुवा विय ।

सो पलवती दुरादुरं फलमिच्छं 'व वनस्मिं वानरो ॥ १ ॥

( मनुजस्य प्रमत्तचारिणः तृष्णा वर्द्धते मालुवेव ।

स प्लवतेऽहरहः फलमिच्छन् इव वने वानरः ॥ १ ॥ )

अनुवाद—प्रमत्त होकर आचरण करनेवाले मनुष्यकी तृष्णा मालुवा ( लता ) की भाँति बढ़ती है, वनमें वानरकी भाँति फलकी इच्छा करते दिनोदिन वह भटकता रहता है ।

३३५—यं एसा सहती जम्मि तण्हा लोके विमत्तिका ।

सोका तस्स पबड्ढन्ति अभिवड्ढं 'व वीरणं ॥ २ ॥

( यं एषा साहयति जन्मिनी तृष्णा लोके विषात्मिका ।

शोकास्तस्य प्रवर्द्धन्तेऽभिवर्द्धमानं इव वीरणम् ॥ २ ॥ )

अनुवाद—यह ( बराबर ) जनमते रहनेवाली विषरूपी तृष्णा जिसको पकड़ती है, वर्द्धनशील वीरण ( = चटाई बनानेका एक तृण ) की भाँति उसके शोक बढ़ते हैं ।



३३६—यो चेत्तं सहती जम्भिं तण्हं लोके दुरच्चयं ।

सोका तम्हा पपतन्ति उदविन्दू 'व पोक्खरा ॥ ३ ॥

( यश्चैतां साहयति जन्मिनीं तृष्णां लोके दुरत्ययाम् ।

शोकाः तस्मात् प्रपतन्त्युदविन्दुरिव पुष्करात् ॥ ३ ॥ )

अनुवाद—इस बराबर जनमते रहनेवाली, दुस्त्याज्य तृष्णाको जो लोकमें परास्त करता है, उससे शोक (वैसेही) गिर जाते हैं, जैसे कमल(-पत्र)से जलका विन्दु ।

३३७—तं वो वदामि भद्रं वो यावन्तेत्य समागता ।

तण्हाय मूलं खण्ण्य उसीरत्थो 'व वीरणं ॥ ४ ॥

( तद् वो वदामि भद्रं वो यावन्त इह समागताः ।

तृष्णाया मूलं खनतोशीरार्थीव वीरणम् ॥ ४ ॥ )

अनुवाद—इसलिये तुम्हें कहता हूँ, जितने यहाँ आये हो, तुम्हारा सबका मंगल हो, जैसे खसके लिये लोग उषीरको खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णाकी जड़को खोदो ।

जेतवन

गूथ-सुकर-पोतिक

३३८—यथापि मूले अनुपद्दे दळ्हे

छिन्नोपि खखो पुनरेव रूहति ।

एवम्पि तण्हानुसये अनूहते

निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं ॥ ५ ॥

( यथाऽपि मूलेऽनुपद्रवे दृढे छिन्नोऽपि वृक्षः पुनरेव रोहति ।

एवमपि तृष्णाऽनुशयेऽनिहते निर्वर्तते दुःखमिदं पुनः पुनः ॥ ५ ॥ )

अनुवाद—जैसे जड़के दड़ और न कटी होनेपर कटा हुआ भी वृक्ष फिर उग आता है, इसी प्रकार तृष्णारूपी अनुशय ( =मल )के न नष्ट होनेपर, यह दुःख फिर फिर पैदा होता है ।

३३६—यस्स छत्तिंसती सोता मनापस्सवना मुसा ।

वाहा वहन्ति दुद्धिट्ठि सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥६॥

( यस्य षट्त्रिंशत् स्रोतांसि मनापश्रवणानि भूयासुः ।

वाहा वहन्ति दुर्द्धि संकल्पा रागनिःसृताः ॥ ६ ॥ )

अनुवाद—जिसके, छत्तीस स्रोत\* मनको अच्छी लगनेवाली ( चीजों ) को ही लानेवाले हों, ( उसके लिए ) रागलिप्त संकल्प रूपी वाहन बुरी धारणाओंको वहन करते हैं ।

३४०—सवन्ति सव्वधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति ।

तच्च दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्जाय छिन्दथ ॥७॥

( स्रवन्ति स्रवतः स्रोतांसि लता उद्भिज्य तिष्ठति ।

तां च दृष्ट्वा लतां जानां, मूलं प्रज्ञया छिन्दत ॥७॥ )

अनुवाद—( यह ) स्रोत चारों ओर बहते हैं, ( जिनके कारण ) ( तृष्णा रूपी ) लता अकुरित रहती है; उस

---

\*आँख, कान, नाक, जीभ, काया [ =चर्म ], मन, रूप, गंध, शब्द, रस, स्पर्श, धर्म [ =मनका विषय ], आँखका विज्ञान [ =आँखसे होनेवाला ज्ञान ], और कान, नाक, जीभ, काया तथा मनके विज्ञान; यही भीतरी और बाहरी भेदसे छत्तीस स्रोत होते हैं ।

उत्पन्न हुई लताको जानकर, प्रज्ञासे ( उसकी ) जड़को काटो ।

- ३४१—सरितानि सिनेहितानि च सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो ।  
 तं सोतसिता सुखेसिनो ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥८॥  
 ( सरितः स्निग्धाश्च सौमनस्या भवन्ति जन्तोः ।  
 ते स्रोतःसृताः सुखैषिणस्ते वै जातिजरोपगा नराः ॥८॥ )

अनुवाद—( यह ) ( तृष्णा रूपी ) नदियाँ स्निग्ध और प्राणियोंके चित्तको सुश रखनेवाली होती है; ( जिनके कारण ) नर स्रोतमें बंधे, सुखकी खोज करते, जन्म और जराके फेरमें पड़ते हैं ।

- ३४२—तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो 'व बाधितो ।  
 सज्जोजनसङ्ग सत्तका दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय ॥९॥  
 ( तृष्णया पुरस्कृताः प्रजाः परिसर्पन्ति शश इव बद्धः ।  
 संयोजनसंगसत्तका दुःखमुपयन्ति पुनः पुनः चिराय ॥९॥ )

अनुवाद—तृष्णाके पीछे पड़े प्राणी, बंधे खरगोशकी भाँति चक्कर काटते हैं; संयोजनों (=मनके बंधनों) में फँसे ( जन ) पुनः पुनः चिरकाल तक दुःखको पाते हैं ।

- ३४३—तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो 'व बाधितो ।  
 तस्मा तसिनं विनोदये भिक्खू अकङ्खी विरागमत्तनो ॥ १० ॥  
 ( तृष्णया पुरस्कृताः प्रजाः  
 परिसर्पन्ति शश इव बद्धः ।

तस्मात् तृष्णां विनोदयेद्

भिश्रुराकांक्षी विरागमात्मनः ॥१०॥)

अनुवाद—तृष्णाके पीछे पड़े प्राणी बंधे खरगोशकी भाँति चक्कर काटते हैं; इसलिये भिक्षुको चाहिए कि वह अपने वैराग्यकी इच्छा रखे, तृष्णाको दूर करे ।

वेणुवन

विभन्तक ( भिक्षु )

३४४—यो निब्बनथो वनाधिसुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति ।

तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धनमेव धावति ॥११॥

( यो निर्वाणार्थी वनाऽधिसुत्तो

वनमुत्तो वनमेव धावति ।

तुं पुद्गलमेव पश्यत मुत्तो

बन्धनमेव धावति ॥११॥)

अनुवाद—जो निर्वाणकी इच्छा वाला ( पुरुष ) वन(=तृष्णा)से मुक्त हो, वनसे सुमुक्त हो, फिर वन (=तृष्णा) ही की ओर दौड़ता है, उस व्यक्तिको ( वैसे ही ) जानो जैसे कोई ( बन्धन )से मुक्त ( पुरुष ) फिर बन्धन ही की ओर दौड़े ।

जेतवन

बन्धनागार

३४५—न तं दब्धं बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारुजं पञ्चजञ्च ।

सारत्तरत्ता मणि कुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥ १२ ॥

( न तद् दृढं बन्धनमाहुर्धीरा

यद् आयसं दारुजं पञ्चजञ्च ।

सारवद्रक्ता मणिकुण्डलेषु

पुत्रेषु दारेषु च याऽपेक्षा ॥१२॥

अनुवाद—( यह ) जो लोहे लकड़ी या रस्सीका बन्धन है, उसे बुद्धि-  
मान ( जन ) दृढ़ बन्धन नहीं कहते, ( वस्तुतः दृढ़ बन्धन  
है जो यह ) धन(=सारवत्)में रक्त होना, या मणि, कुण्डल,  
पुत्र स्त्रीमें इच्छाका होना है ।

३४६—एतं दृढं बन्धनमाहु धीरा

अपहारिणं शिथिलं दुष्प्रमुञ्चं ।

एतम्पि छेत्त्वान् परिब्रजन्ति

अनपेक्षित्वनो कामसुखं प्रहाय ॥ १३ ॥

( एतद् दृढं बन्धनमाहुर्धीरा

अपहारि शिथिलं दुष्प्रमोचम् ।

एतदपि छित्त्वा परिब्रजन्त्य-

-नपेक्षिणः कामसुखं प्रहाय ॥ १३ ॥ )

अनुवाद—धीर पुरुष इसीको दृढ़ बन्धन, अपहारक शिथिल और  
दुस्त्याज्य कहते हैं; (यह) अपेक्षा रहित हो, तथा काम-सुखो-  
को छोड़, इस (दृढ़) बन्धनको छिन्नकर, प्रव्रजित होते हैं ।

राजगृह ( वेणुवन )

खेमा ( बिम्बसार-महिषी )

३४७—ये रागरत्नानुपतन्ति सोतं सयं कतं मक्कटको 'व जालं ।

एतम्पि छेत्त्वान् ब्रजन्ति धीरा

अनपेक्षित्वनो सब्बदुक्खं प्रहाय ॥ १४ ॥

( ये रागरक्ता अनुपतन्ति स्रोतः

स्वयंकृतं मर्कटक इव जालम् ।

पतदपि छित्त्वा व्रजन्ति धीरा

अनपेक्षिणः सर्वदुःखं प्रहाय ॥१४॥)

अनुवाद—जो रागमे रक्त हैं, वह जैसे मकड़ी अपने बनाये जालमे पडती है, ( वैसे ही ) अपने बनाये, स्रोतमें पडते हैं, धीर ( पुरुष ) इस ( स्रोत )को भी छेद कर सारे दुःखोंको छोड आकांक्षा रहित हो चल देते हैं ।

राजगृह ( वेणुवन )

उगसेन ( श्रेष्ठी )

३४८—मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो मज्झं मुञ्च भवस्स पारगू ।

सम्बत्थ विमुक्तमानसो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥१५॥

( मुञ्च पुरो मुञ्च पश्चात् मध्ये मुञ्च भवस्य पारगः ।

सर्वत्र विमुक्तमानसो न पुनः जातिजरे उपैषि ॥१५॥)

अनुवाद—आगे पीछे और मध्यकी ( सभी वस्तुओंको ) त्याग दो, ( और उन्हे छोड ) भव(सागर)के पार हो जाओ; जिसका मन चारों ओरमे मुक्त हो गया, ( वह ) फिर जन्म और जरा को प्राप्त नहीं होता ।

जैतवन

( चुल्ल ) धनुरगह पडित

३४९—वितक्कपमथितस्स जन्तुनो तिव्वरागस्स सुभानुपस्सिनो ।

भिय्यो तएहा पवड्ढति एसो खो दल्ल्हं करोति बन्धनं ॥ १६ ॥

( वितर्क-प्रमथितस्य जन्तोः

तीव्ररागस्य शुभाऽनुदर्शिनः ।

भूयः तृष्णा प्रबर्द्धते एष खलु दढं करोति बन्धनम् ॥१६॥)

अनुवाद—जो प्राणी सन्देहसे मथित, तीव्र रागसे युक्त, सुन्दर ही सुन्दरको देखने वाला है, उसकी तृष्णा और भी अधिक बढ़ती है, वह (अपनेलिए) और भी दृढ़ बन्धन तय्यार करता है।

३५०—वितक्कूपसमे च यो रतो अशुभं भावयति सदा सतो ।

एस खो व्यन्तिकाहिनी एमच्छेज्जति मारबन्धनं ॥ १७ ॥

( वितर्कोपशमे च यो रतो

ऽशुभं भावयते सदा स्मृतः ।

एष खलु व्यन्तीकरिष्यति

एष छेत्स्यति मारबन्धनम् ॥ १७ ॥

अनुवाद—सन्देहके शान्त करनेमें जो रत है, सचेत रह ( जो ) अशुभ ( दुनियाके अन्धेरे पहलू ) की भी सदा भावना करता है। वह मारके बन्धनको छिल्ल करेगा, विनाश करेगा ।

जेतवन

मार

३५१—निट्ठङ्गतो असन्तामी वीततण्हो अनङ्गणो ।

उच्छिज्ज भवसल्लानि अन्तिमो'यं समुत्सयो ॥ १८ ॥

( निष्टांगतोऽसंत्रासी वीततृष्णोऽनंगणः ।

उत्सृज्य भवशल्यानि, अन्तिमोऽयं समुत्सयः ॥ १८ ॥

अनुवाद—जिसके ( पाप-पुण्य ) समाप्त हो गये; जो त्रास-उत्पादक नहीं है, जो तृष्णारहित और मलरहित है, वह भवके शल्योंको उखाड़ेगा, यह उसका अंतिम देह है ।

३५२—वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो ।  
 अक्खरानं सन्निपातं जञ्जा पुब्बापरानि च ।  
 स वे अन्तिमशारीरो महापज्जो'ति वुच्चति ॥१६॥  
 ( वीततृष्णोऽनादानो निरुत्तिपदकोविदो ।  
 अक्षराणां सन्निपातं जानाति पूर्वापरानि च ।  
 स वै अन्तिमशारीरो महाप्राज्ञ इत्युच्यते ॥१९॥ )

अनुवाद—जो तृष्णारहित, परिग्रहरहित, भाषा और काव्यका जान-  
 कार है; और ( जो ) अक्षरोके पहिले पीछे रखनेको जानता  
 है, वह निश्चय ही अन्तिम शरीर वाला तथा महाप्राज्ञ  
 कहा जाता है ।

वाराणसीसे गयाके रास्तेमें

उपक ( आजीवक )

३५३—सब्बाभिभू सर्वविदूहमस्मि  
 सब्बेसु धम्मेषु अणु पलित्तो ।  
 सब्बज्जहो तण्हक्खये विमुत्तो  
 सयं अभिज्जाय कमुद्दिसेय्यं ॥२०॥  
 ( सर्वाभिभूः सर्वविदूहमस्मि सर्वेषु धर्मेष्वनुपलितः ।  
 सर्वजहः तृष्णाक्षये विमुक्तः  
 स्वयमभिज्ञाय कमुद्दिशेयम् ॥ २० ॥ )

अनुवाद—मैं ( राग आदि ) सभीका परास्त करनेवाला हूँ, ( दुःखसे  
 मुक्ति पानेकी ) सभी ( बातों )का जानकार हूँ, सभी  
 धर्मों ( =पदार्थों )में अलिप्त हूँ, सर्वव्यापी, तृष्णाके नाशसे



मुक्त हूँ, ( विमल ज्ञानको ) अपने ही जानकर ( मैं अब )  
किसको ( अपना गुरु ) बतलाऊँ ?

जेतवन

सक देवराज

३५४—सब्बदानं धम्मदानं जिनाति  
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति ।  
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति  
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥२१॥  
( सर्वदानं धर्मदानं जयति  
सर्वं रसं धर्मरसो जयति ।  
सर्वा रतिं धर्मरतिर्जयति  
तृष्णाक्षयः सर्वदुःखं जयति ॥ २१ ॥ )

अनुवाद—धर्मका दान सारे दानोंमें बढ़कर है, धर्मरस सारे रसोंसे प्रबल है, धर्ममें रति सब रतियोंसे बढ़कर है, तृष्णाका विनाश सारे दुःखोंको जीत लेता है ।

जेतवन

( अपुत्रक श्रेष्ठी )

३५५—हनन्ति भोगा दुग्धेयं नो चे पागवेसिनो ।  
भोगतण्हाय दुग्धेयो हन्ति अज्जे'व अत्तनं ॥२२॥  
( घ्नन्ति भोगा दुग्धेयं न चेत् पागवेषिणः ।  
भोगतृष्णया दुग्धेया हन्त्यन्य इवात्मनः ॥ २२ ॥ )

अनुवाद—( संसारको ) पार होनेकी कोशिश न करनेवाले दुर्बुद्धि ( पुरुष )को भोग नष्ट करते हैं, भोगकी तृष्णामें पड़कर ( वह ) दुर्बुद्धि परायेकी भाँति अपने हीको हनन करता है ।

पाण्डुकम्बलशिला ( देवलोक )

मङ्कुर

३५६—तिण्णदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा ।

तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२३॥

( तृणदोषाणि क्षेत्राणि रागदोषेयं प्रजा ।

तस्माद्धि वीतरागेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २३ ॥ )

अनुवाद—खेतोंका दोष तृण है, इस प्रजा ( =मनुष्यों )का दोष राग है, इसलिये ( दान ) वीतराग ( पुरुष )को देनेमें महाफलप्रद होता है ।

३५७—तिण्णदोसानि खेत्तानि दोमदोसा अयं पजा ।

तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२४॥

( तृणदोषाणि क्षेत्राणि द्वेषदोषेयं प्रजा ।

तस्माद्धि वीतद्वेषु दषेत्तं भवति महाफलम् ॥ २४ । )

अनुवाद—खेतोंका दोष तृण है, इस प्रजाका दोष द्वेष है; इसलिये वीतद्वेष (=द्वेषरहित )को देनेमें महाफल होता है ।

३५८—तिण्णदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा ।

तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२५॥

( तृणदोषाणि क्षेत्राणि मोहदोषेयं प्रजा ।

तस्माद्धि वीतमोहेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २५ ॥ )

अनुवाद—खेतोंका दोष तृण है, इस प्रजाका दोष मोह है; इसलिये वीतमोह(=मोहरहित )को देनेमें महाफल होता है ।

३५६—तिण्णदोसानि खेत्तानि इच्छादोसो अयं पजा ।

तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २६ ॥

( तृणदोषाणि क्षेत्राणि, इच्छादोषेयं प्रजा ।

तस्माद्वि विगतेच्छेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २६ ॥ )

अनुवाद—खेतोका दोष तृण है, इस प्रजाका दोष इच्छा है; इसलिये

विगतेच्छ(=इच्छारहित)को देनेमें महाफल होता है ।

२४—तृष्णावर्ग समाप्त

## २५—भिक्षुवग्गो

जेतवन

पाँच भिक्षु

३६०—चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।

घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो ॥१॥

( चक्षुषा संवरः साधुः, साधुः श्रोत्रेण संवरः ।

घ्राणेन संवरः साधुः, साधुः जिह्वया संवरः ॥१॥)

अनुवाद—आँखका संवर (=संयम ) ठीक है, ठीक है कानका संवर,

घ्राण(=नाक )का संवर ठीक है, ठीक है जीभका संवर ।

३६१—कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो ।

मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो ।

सब्बत्थ संबुतो भिक्खू सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥२॥

( कायेन संवरः साधुः साधुः वाचा संवरः ।

मनसा संवरः साधुः, साधुः सर्वत्र संवरः ।

सर्वत्र संबुतो भिक्षुः सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥२॥)

अनुवाद—कायाका संवर (=संयम ) ठीक है, ठीक है वचनका संवर;  
मनका संवर ठीक है, ठीक है सर्वत्र ( इन्द्रियों)का संवर;  
सर्वत्र संवर-युक्त भिक्षु सारे दुःखोमे छूट जाता है ।

जैतवन

हंसघातक ( भिक्षु )

३६२—हृत्सञ्जतो पादसञ्जतो वाचाय सञ्जतो सञ्जतुत्तमो ।

अञ्जत्तरतो समाहितो एको सन्तुसितो तमाहु भिक्षू ॥३॥

( हस्तसंयतः पादसंयतो वाचा संयतः संयतोत्तमः ।

अध्यात्मरतः समाहित एकः सन्तुष्टस्तमाहुर्भिक्षुम् ॥३॥)

अनुवाद—जिसके हाथ, पैर और वचनमें संयम है, ( जो ) उत्तम  
संयमी है, जो घटके भीतर (=अध्यात्म ) रत, समाधियुक्त,  
अकेला ( और ) सन्तुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं ।

जैतवन

कोकालिय

३६३—यो मुखसञ्जतो भिक्षू मन्तभाणो अनुद्धतो ।

अर्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥४॥

( यो मुखसंयतो भिक्षुर्मन्त्रभाणो अनुद्धतः ।

अर्थं धम्मं च दीपयति मधुरं तस्य भाषितम् ॥४॥)

अनुवाद—जो मुखमें संयम रखता है, मनन करके बोलता है,  
उद्धत नहीं है, अर्थ और धर्मको प्रकट करता है, उसका  
भाषण मधुर होता है ।

जैतवन

धम्मराम ( थेर )

३६४—धम्मरामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं ।

धम्मं अनुस्सरं भिक्षू सद्धम्मा न परिहायति ॥५॥

( धर्मारामो धर्मरतो धर्म अनुविचिन्तयन् ।  
धर्ममनुस्सरन् भिक्षुः सद्धर्माच्च परिहीयते ॥५॥ )

अनुवाद—धर्ममें रमण करनेवाला, धर्ममें रत, धर्मका चिन्तन करते,  
धर्मका अनुस्मरण करते भिक्षु सच्चे धर्मसे च्युत नहीं होता ।

राजगृह ( वेणुवन )

विपक्ख-सेवक ( भिक्षु )

३६५—सलाभं नातिमज्जेय्य, नाज्जेसं पिहयं चरे ।

अज्जेसं पिहयं भिक्खू समाधिं नाधिगच्छति ॥६॥

( स्वलाभं नाऽतिमन्येत, नाऽन्येषां स्पृहयन्, चरेत् ।

अन्येषां स्पृहयन् भिक्षुः समाधिं नाऽधिगच्छति ॥६॥ )

अनुवाद—अपने लाभकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए । दूसरोंके  
( लाभ )की स्पृहा न करनी चाहिये । दूसरोंके ( लाभकी )  
स्पृहा करनेवाला भिक्षु समाधि(=चित्रकी एकाग्रता)को  
नहीं प्राप्त करता ।

३६६—अप्पलाभोपि चे भिक्खू स-लाभं नातिमज्जति ।

तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाज्जीविं अतन्द्रितं ॥७॥

( अल्पलाभोऽपि चेद् भिक्षुः स्वलाभं नाऽतिमन्यते ।

तं वं देवाः प्रशंसन्ति शुद्धाऽऽजीवं अतन्द्रितम् ॥७॥ )

अनुवाद—चाहे अल्प ही हो, भिक्षु अपने लाभकी अवहेलना न करे ।  
उसीकी देवता प्रशंसा करते हैं, ( जो ) शुद्ध जीविकावाला  
और आलस्यरहित है ।

जैतवन

( पाँच अग्रदायक भिक्षु )

३६७—सब्बसो नाम-रूपस्मिं यत्स नत्थि ममायितं ।

असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति ॥८॥

( सर्वशो नामरूपे यस्य नाऽस्ति ममायितम् ।

असति च न शोचति सर्वे भिक्षुरित्युच्यते ॥८॥)

अनुवाद—नाम-रूप(=जगत)में जिसकी विष्कूल ही ममता नहीं,  
न होनेपर ( जो ) शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहा  
जाता है ।

जैतवन

बहुतसे भिक्षु

३६८—मेत्ताविहारी यो भिक्खू पसन्ना बुद्धसासने ।

अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्गारूपसमं सुखं ॥९॥

( मैत्रीविहारी यो भिक्षुः प्रसन्नो बुद्धशासने ।

अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम् ॥९॥)

अनुवाद—मैत्री(-भावना)से विहार करता जो भिक्षु बुद्धके उप-  
देशमें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) रहता है, ( वह ) सभी संस्कारों  
को शमन करनेवाले शान्त ( और ) सुखमय पदको प्राप्त  
करता है ।

३६९—सिञ्च भिक्खू ! इमं नावं सिक्का ते लहुमेस्सति ।

छेत्त्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बाणमेहिसि ॥१०॥

( सिञ्च भिक्षो ! इमां नावं सिक्काते लघुवं पण्यति ।

छिन्वा रागं च द्वेषं च ततो निर्वाणमेष्यसि ॥१०॥)

अनुवाद—हे भिक्षु ! इस नावको उलीचो, उलीचने पर ( यह )  
तुम्हारे लिये हल्की हो जायेगी । राग और द्वेषको छेदनकर,  
फिर तुम निर्वाणको प्राप्त होगे ।

३७०—पंच छिन्दे पञ्च जहे पञ्चवृत्ति भावये ।

पञ्च सङ्गातिगो भिक्खू ओघतिण्णोति वुच्चति ॥ ११ ॥

( पंच छिन्धि पंच जहीहि पंचोत्तरं भावय ।

पंचसंगाऽतिगो भिक्षुः, 'ओघतीर्ण' इत्युच्यते ॥ ११ ॥ )

अनुवाद—( जो रूप, राग, मान, उद्धतपना और अविद्या इन )  
पाँचको छेदन करे; ( जो नित्य आत्माकी कल्पना, सन्देह,  
शील-व्रत पर अधिक जोर, भोगोमें राग, और प्रतिहिंसा  
इन ) पाँचको त्याग करे; उपरान्त ( जो श्रद्धा, वीर्य,  
स्मृति, समाधि और प्रज्ञा ) इन पाँचकी भावना करे;  
( जो, राग, द्वेष, मोह, मान, और झूठी धारणा इन )  
पाँचके संसर्गको अतिक्रमण कर चुका है; ( वह काम, भव  
दृष्टि और अविद्यारूपी ) ओघों(=बाढ़ों)से उत्तीर्ण हुआ  
कहा जाता है ।

३७१—भाय भिक्खू ! मा च पामदो

मा ते कामगुणे भमत्सु चित्तं ।

या लोहगुलं गिली पमत्तो

मा कंदी दुक्खमिदन्ति डय्हमानो ॥ १२ ॥

( ध्याय भिक्षो ! मा च प्रमादः,

मा ते कामगुणे भ्रमतु चित्तम् ।



मा लोहगोलं गिल प्रमत्तः,

मा क्रन्दीः दुःखमिदमिति दह्यमानः ॥१२॥

अनुवाद—हे भिक्षु ! ध्यानमें लगे, मत गफलत करो, तुम्हारा चित्त मत भोगोंके चक्करमें पड़ें, प्रमत्त होकर मत लोहके गोलेको निगलो, '( हाय ! ) यह दुःख' कहकर दग्ध होते ( पीछे ) मत तुम्हें क्रन्दन करना पड़े ।

३७२—नत्थि भानं अपञ्जस्स पञ्जा नत्थि अभायतो ।

यम्हि भानञ्च पञ्जा च स वे निब्बाणसन्तिके ॥१३॥

( नाऽस्ति ध्यानमप्रज्ञस्य प्रज्ञा नाऽस्त्यध्यायतः ।

यस्मिन् ध्यानं च प्रज्ञा च सर्वे निर्वाणाऽन्तिके ॥१३॥ )

अनुवाद—प्रज्ञाविहीन ( पुरुष )को ध्यान नहीं ( होता ) है, ध्यान ( एकाग्रता ) न करनेवालेको प्रज्ञा नहीं हो सकती । जिसमें ध्यान और प्रज्ञा ( दोनों ) हैं, वही निर्वाणके समीप है ।

३७३—सुञ्जागारं पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो ।

अमानुसी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो ॥१४॥

( शून्यागारं प्रविष्टस्य शान्तचित्तस्य भिक्षोः ।

अमानुषी रतिर्भवति सम्यग् धर्मं विपश्यतः ॥१४॥ )

अनुवाद—शून्य(=एकान्त ) गृहमें प्रविष्ट, शान्तचित्त भिक्षुको भली प्रकार धर्मका साक्षात्कार करते, अमानुषी रति (=आनंद ) होती है ।

३७४—यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयव्वयं ।

लभती पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं ॥१५॥

( यतो यतः संमृशति स्वन्धानां उदयव्ययम् ।  
लभते प्रीतिप्रामोद्यं अमृतं तद् विजानताम् ॥ १५ ॥ )

अनुवाद—( पुरुष ) जैसे जैसे ( रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान इन ) पाँच स्कन्धोंकी उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, ( वैसे ही वैसे, वह ) ज्ञानियोंकी प्रीति और प्रमोद ( रूपी ) अमृतको प्राप्त करता है ।

३७५—तत्रायमादि भवति इष पञ्जस्स भिक्षुणो ।  
इन्द्रियगुत्ती सन्तुट्ठी प्रातिमोक्खे च संवरो ।  
मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धानीवे अतन्दित्ते ॥ १६ ॥

( तत्राऽयमादिर्भवतीह प्राज्ञस्य भिक्षोः ।  
इन्द्रियगुप्तिः सन्तुष्टिः प्रातिमोक्षे च संवरः ।  
मित्राणि भजस्य कल्याणानि शुद्धाजीवान्यतन्द्रितानि ॥ १६ ॥ )

अनुवाद—यहाँ प्राज्ञ भिक्षुको आदि( में करना ) है—इन्द्रिय-संयम, सन्तोष और प्रातिमोक्ष(=भिक्षुओंके आचार)की रक्षा । ( वह, इसके लिये ) निरालस, शुद्ध जीविकावाले, अच्छे मित्रोंका सेवन करे ।

३७६—पटिसन्थावुत्तस्स आचारकुसलो सिया ।  
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति ॥ १७ ॥  
( प्रतिसंस्तारवृत्तस्याऽऽचारकुशलः स्यात् ।  
ततः प्रामोद्यबहुलो दुःखस्याऽन्तं करिष्यति ॥ १७ ॥ )

अनुवाद—जो सेवा सत्कार स्वभाववाला तथा आचार( पालन)में निपुण है, वह सानन्द दुःखका अन्त करेगा ।

जेतवन

पाँच सौ भिक्षु

३७७—वस्सिका विय पुष्फानि मद्धानि पमुञ्चति ।

एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ॥ १८ ॥

( वर्षिका इव पुष्पाणि मर्दितानि प्रमुञ्चति ।

एवं रागं च द्वेषं च विप्रमुञ्चत भिक्षवः ॥ १८ ॥

अनुवाद—जैसे जूही कुम्हलाये फूलोंको छोड़ देती है, वैसे ही हे भिक्षुओ ! ( तुम ) राग और द्वेषको छोड़ दो ।

जेतवन

( शान्तकाय थेर )

३७८—सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो ।

वन्तलोफामिसो भिक्खू उपसन्तो 'ति वुञ्चति ॥ १९ ॥

(शान्तकायो शान्तवाक् शान्तिमान् सुसमाहितः ।

वान्तलोकाऽऽमिषो भिक्षुः 'उपशान्त' इत्युच्यते ॥ १९ ॥

अनुवाद—काया (और) वचनमे शान्त, भली प्रकार समाधियुक्त, शान्ति सहित ( तथा ) लोकके आमिषको वसन कर दिये हुए भिक्षुको 'उपशान्त' कहा जाता है ।

जेतवन

लङ्गूल ( थेर )

३७९—अत्तना चोदय'त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना ।

सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खू विहाहिसि ॥ २० ॥

( आत्मना चोदयेदात्मानं प्रतिवसेदात्मानं आत्मना ।

स आत्मगुप्तः स्मृतिमान् सुखं भिक्षो! विहरिष्यसि ॥ २० ॥

अनुवाद—( जो ) अपने ही आपको प्रेरित करेगा, अपने ही आपको  
सलग्न करेगा; वह आत्म-गुप्त (=अपने द्वारा रक्षित )  
मृति-संयुक्त भिक्षु सुखसे विहार करेगा !

३८०—अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।  
तस्मा सज्जमयत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो ॥२१॥  
( आत्मा ह्यात्मनो नाथ आत्मा ह्यात्मनो गतिः ।  
तस्मात् संयमयात्मानं अश्वं भद्रमिव वणिक् ॥२१॥

अनुवाद—( मनुष्य ) अपने ही अपना स्वामी है, अपने ही अपनी  
गति है; इसलिये अपनेको संयमी बनावे, जैसे कि  
सुन्दर घोड़ेको बनिया ( संयत करता है ) ।

राजगृह ( वेणुवन )

वक्कालि ( थेर )

३८१—पामोज्जबहुलो भिक्खू पसन्तो बुद्धमासने ।  
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥२२॥  
( प्रामोद्यबहुलो भिक्षुः प्रसन्नो बुद्धशासने ।  
अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम् ॥२२॥

अनुवाद—बुद्धके उपदेशमे प्रसन्न बहुत प्रमोदयुक्त भिक्षु संस्कारोको  
उपशमन करनेवाले सुखमय शान्त पदको प्राप्त करता है ।

श्रावस्ती ( पूर्वाराम )

सुमन ( सामणेर )

३८२—यो ह वे द्हरो भिक्खू युज्जते बुद्धसासने ।  
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो 'व चन्दिमा ॥२३॥

( यो ह वै दहरो भिक्षुर्युक्ते बुद्धशासने ।

स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान् मुक्त इव चन्द्रमा ॥२३॥ )

अनुवाद—जो भिक्षु यौवनमें बुद्ध-शासन (=बुद्धोपदेश, बुद्ध-धर्म )  
में संलग्न होता है, वह मेघसे मुक्त चन्द्रमाकी भाँति इस  
लोकको प्रकाशित करता है ।

२५—भित्तुवर्ग समाप्त

## २६—ब्राह्मणवग्गो

जेतवन

( एक बहुत श्रद्धालु ब्राह्मण )

३८३—छिन्द सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण ! ।

संखारानं खयं भत्वा अकतञ्जूसि ब्राह्मण ! ॥१॥

( छिन्धि स्रोतः पराक्रम्य कामान् प्रणुद ब्राह्मण ! ।

संस्काराणां क्षयं ज्ञात्वाऽकृतज्ञोऽसि ब्राह्मण ! ॥१॥ )

अनुवाद—हे ब्राह्मण ! ( तृष्णा रूपी ) स्रोतको छिन्न करदे, पराक्रम कर, ( और ) कामनाओंको भगादे । संस्कृत (=कृत वस्तुओं, ५ उपादानस्कन्धों )के विनाशको जानकर, तू अकृत (=न कृत, निर्वाण )को पानेवाला हो जायेगा ।

जेतवन

( बहुतसे भिक्षु )

३८४—यदा द्वयेसु धम्मेसु पारग्गं होति ब्राह्मणो ।

अथस्स सञ्जे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो ॥२॥

( यदा द्वयोर्धर्मयोः पारगो भवति ब्राह्मणः ।

अथाऽस्य सर्वे संयोगा अस्तं गच्छन्ति जानतः ॥२॥ )

अनुवाद—जब ब्राह्मण दो धर्मों (—चित्त-संयम और भावना)में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकारके सभी संयोग (=बंधन ) अस्त हो जाते हैं ।

जेतवन

मार

३८५—यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति ।

वीतहरं विसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥३॥

( यस्य पारं अपारं वा पारापारं न विद्यते ।

वीतहरं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३॥ )

अनुवाद—जिसके पार (=ओख, कान, नाक, जीभ, काया, मन ), अपार (=रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म ) और पारापार (=मैं और मेरा ) नहीं हैं, ( जो ) निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

( कोई ब्राह्मण )

३८६—भायिं विरजमासीनं कतकिञ्चं अनासवं ।

उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४॥

( ध्यायिनं विरजसमासीनं कृतकृत्यं अनास्रवम् ।

उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४॥ )

अनुवाद—( जो ) ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध (=स्थिर ), कृतकृत्य आस्रव (=चित्तमल)-रहित है, जिसने उत्तम अर्थ (=सत्य) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

श्रावस्ती ( पूर्वाराम )

आनन्द ( थेर )

३८७—दिवा तपति आदिच्चो रत्ति आभाति चन्दिमा ।

सन्नद्धो खत्तियो तपति भार्या तपति ब्राह्मणो ।

अथ सम्बमहोरत्ति बुद्धो तपति तेजसा ॥५॥

( दिवा तपयादिस्यो रात्रावाभाति चन्द्रमा ।

सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः ।

अथ सर्वमहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा ॥५॥ )

अनुवाद—दिनमें सूर्य तपता है, रातको चन्द्रमा प्रकाशता है,  
कवचबद्ध ( होनेपर ) क्षत्रिय तपता है, ध्यानी ( होनेपर )  
ब्राह्मण तपता है, और बुद्ध रात-दिन ( अपने ) तेजसे सब-  
( से अधिक ) तपता है ।

जेतवन

( कोई प्रव्रजित )

३८८—वाहितपापो 'ति ब्राह्मणो समचरिया समणो'ति वुच्चति ।

पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बजितो'ति वुच्चति ॥६॥

( वाहितपाप इति ब्राह्मणः समचर्यः श्रमण इत्युच्यते ।

प्राव्रजयन्नाऽऽत्मनो मलं तस्मात् प्रव्रजित इत्युच्यते ॥६॥ )

अनुवाद—जिसने पापको ( धोकर ) बहा दिया वह ब्राह्मण है, जो  
समताका आचरण करता है, वह समण (=श्रमण=  
संन्यासी ) है, ( चूँकि ) उसने अपने ( चित्त-) मलोंको हटा  
दिया, इसीलिये वह प्रव्रजित कहा जाता है ।



जैतवन

सारिपुत्त ( थेर )

३८६—न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुंचेथ ब्राह्मणो ।

धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्म मुञ्चति ॥७॥

( न ब्राह्मणं प्रहरेत् नाऽस्मै मुञ्चेद् ब्राह्मणः ।

धिग् ब्राह्मणस्य हन्तारं ततो धिग् यस्मै मुञ्चति ॥७॥ )

अनुवाद—ब्राह्मण (=निष्पाप ) पर प्रहार नहीं करना चाहिये, और ब्राह्मणको भी उस ( प्रहारदाता ) पर ( कोप ) नहीं करना चाहिये, ब्राह्मणको जो मारता है, उसे धिक्कार है, और धिक्कार उसको भी है, जो ( उसके लिये ) कोप करता है ।

३८०—न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि संय्यो

यदा निषेधो मनसो प्रियेहि ।

यतो यतो हिंसमनो निवत्तति

ततो ततो सम्मति एव दुक्खं ॥८॥

( न ब्राह्मणस्यैतद् अकिञ्चित् श्रेयो

यदा निषेधो मनसा प्रियेभ्यः ।

यतो यतो हिंस्रमनो निवर्तते

ततस्ततः शम्यत्येव दुःखम् ॥८॥ )

अनुवाद—ब्राह्मणके लिये यह बात कम कल्याण ( कारी ) नहीं है, जो वह प्रिय ( पदार्थों ) से मनको हटा लेता है, जहाँ जहाँ मन हिंसासे मुड़ता है, वहाँ वहाँ दुःख ( अवश्य ) ही शान्त हो जाता है ।

जेतवन

महापजापती गोतमी

३६१—यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं ।

संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥६॥

( यस्य कायेन वाचा मनसा नाऽस्ति दुष्कृतम् ।

संवृतं त्रिभिः स्थानैः, तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥९॥)

अनुवाद—जिसके मन वचन कायमे दुष्कृत (=पाप) नहीं होते,  
( जो इन ) तीनों ही स्थानोंसे संवर (=संयम) -युक्त है,  
उमे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

सारिपुत्त ( थेर )

३६२—यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं ।

सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्निहुत्तं 'व ब्राह्मणो ॥१०॥

( यस्माद् धर्मं विजानीयात् सम्यक्संबुद्ध-देशितम् ।

सत्कृत्य तं नमस्येद् अग्निहोत्रमिव ब्राह्मणः ॥१०॥)

अनुवाद—जिस( उपदेशक )से सम्यक्संबुद्ध(=बुद्ध)द्वारा उपदिष्ट  
धर्मको जाने, उसे ( वैसेही ) सत्कारपूर्वक नमस्कार करे,  
जैसे अग्निहोत्रको ब्राह्मण ।

जेतवन

जाटिल ब्राह्मण

३६३—न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।

यम्हि सच्चच्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥

( न जटाभिर्न गोत्रैर्न जात्या भवति ब्राह्मणः ।

यस्मिन् सत्यं च धर्मश्च स शुचिः स च ब्राह्मणः ॥११॥)

अनुवाद—न जटासे, न गोत्रसे; न जन्मसे ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म हैं, वही, शुचि (=पवित्र) है, और वही ब्राह्मण है।

वैशाली ( कूटागारशाला )

( पाखडी ब्राह्मण )

३६४—किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिनसाट्ठिया ।

अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥१२॥

( किं ते जटाभिः दुर्मेध ! किं तेऽजिनशाट्ठ्या ।

आभ्यन्तरं ते गहनं बाहिः परिमार्जयसि ? ॥१२॥)

अनुवाद—हे दुर्बुद्धि ! जटाओंसे तेरा क्या ( बनेगा ), ( और ) मृग-चर्मके पहिननेसे तेरा क्या ? भीतर ( दिल ) तो तेरा ( राग आदि मलोंसे ) परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है ?

राजगृह ( गृध्रकूट )

किसा गोतमी

३६५—पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।

एकं वनस्मिं भायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१३॥

( पंशुकूलधरं जन्तुं कृशं धमनिसन्ततम् ।

एकं वने ध्यायन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१३॥)

अनुवाद—जो प्राणी फटे चीथड़ोको धारण करता है, जो दुबला पतला और नसोंसे मढ़े शरीरवाला है, जो अकेला वनमें ध्यानरत रहता है, उन्हे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

( एक ब्राह्मण )

३६६—न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं ।

‘भो वादि’ नाम सो होति स वे होति सक्किच्चनो ।

अक्किच्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १४ ॥

( न चाऽहं ब्राह्मणं ब्रवीमि योनिजं मातृसंभवम् ।

‘भो वादी’ नाम स भवति स वै भवति सक्किचनः ।

अक्किचनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १४ ॥

अनुवाद—माता और योनिसे उत्पन्न होनेसे मैं ( किसी को ) ब्राह्मण नहीं कहता, वह “भो वादी” \* है, वह (तो) संग्रही है; मैं ब्राह्मण उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही, और लेनेकी ( इच्छा ) न रखनेवाला है ।

राजगृह ( वेणुवन )

उग्गमेन ( श्रेष्ठापुत्र )

३६७—सब्बसञ्जोजनं छेत्त्वा यो वे न परितस्मति ।

सङ्गातिगं विसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १५ ॥

( सर्वसंयोजनं छित्त्वा यो वै न परित्रस्यति ।

संगाऽतिगं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १५ ॥

अनुवाद—जो सारे संयोजनों(=बंधनों)को काटता है, जो कि

---

\* उस समयके ब्राह्मण ब्राह्मणको ही “भो” कहकर संबोधन किया करते थे ।

भय नहीं खाता, जो संग और आसक्तिसे विरत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

( दो ब्राह्मण )

३६८—छेत्वा नन्दिं वरत्तञ्च सन्दानं सहनुक्कमं ।

उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१६॥

( छित्त्वा नन्दिं वरत्रां च सन्दानं सहनुक्कमम् ।

उक्खित्तपरिघं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१६॥ )

अनुवाद—नन्दी (=क्रोध), वरत्रा (=तृष्णा रूपी रस्सी), सन्दान (=६२ प्रकारके मतवादरूपी पगहे), और हनुक्कम (=मुँहपर बाँधनेके जावे)को काट एव परिघ (=जूए)को फेक जो बुद्ध (=ज्ञानी) हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणुवन )

( अकोस ) भारद्वाज

३६९—अक्रोसं बध्वन्धञ्च अदुट्ठो यो तित्तिक्खति ।

खन्तिवलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१७॥

( अक्रांशान् बध्व-बंधं च अदुष्टो यस्तिक्खति ।

क्षान्तिवलं बलानीकं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१७॥ )

अनुवाद—जो बिना दूषित ( चित्त ) किये गाली, बध और बंधनको सहन करता है, क्षमा बलही जिसके बल (=सेना)का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणुवन )

सारिपुत्त ( थेर )

४००—अक्रोधनं वतवन्तं सोलवन्तं अनुस्सदं ।

दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १८ ॥

( अक्रोधनं वतवन्तं शीलवन्तं अनुश्रुतम् ।

दान्तं अन्तिमशरीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १८ ॥ )

अनुवाद—जो अक्रोधी, वृत्ती, शीलवान्, बहुश्रुत, संयमी (=दान्त )

और अन्तिम शरीरवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणुवन )

उप्पलवण्णा ( थेरी )

४०१—वारि पोक्खरपत्ते 'व आरग्गरिव सासपो ।

यो न लिप्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १९ ॥

( वारि पुष्करपत्र इव, आराग्र इव सर्पपः ।

यो न लिप्यते कामेषु तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १९ ॥ )

अनुवाद—कमलके पत्तेपर जल, और आरेके नोकपर सरसो,  
की भाँति जो भोगोंमें लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण  
कहता हूँ ।

जेतवन

( कोई ब्राह्मणी )

४०२—यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ।

पन्नभारं विसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २० ॥

( यो दुःखस्य प्रजानातीहैव क्षयमात्मनः ।

पन्नभारं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ २० ॥ )

अनुवाद—जो यही (=इसी जन्ममें ) अपने दुःखोंके विनाशको

जान लेता है, जिसने अपने बोझको उतार फेंका, और जो  
आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( गृधकूट )

खेमा ( भिक्षुणी )

४०३—गम्भीरपञ्जं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।

उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२१॥

( गम्भीरप्रज्ञं मेधाविनं मार्गामार्गस्य कोविदम् ।

उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२१॥

अनुवाद—जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग-अमार्गका ज्ञाता,  
उत्तम पदार्थ (=सत्य)को पाये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

( पञ्चमारवासी ) तिस्र ( थेर )

४०४—असंसट्ठं गहट्ठेहि अपागारेहि चूभयं ।

अनोकसारि अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२२॥

( असंसृष्टं गृहस्थैः, अनागारैश्चोभाभ्याम् ।

अनोकःसारिणं अल्पेच्छं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२२॥

अनुवाद—घरवाले (=गृहस्थ ) और बेघरवाले दोनों हीमें जो लिस  
नहीं होता, जो बिना ठिकानेके घूमता तथा बेचाह है,  
उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

( कोई भिक्षु )

४०५—निधाय दण्डं भूतेषु तसेसु यावसेसु च ।

यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२३॥

( निधाय दण्डं भूतेषु व्रसेषु स्थावरेषु च ।  
यो न हन्ति न घातयति तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२३॥ )

अनुवाद—चर-अचर ( सभी ) प्राणियोमे प्रहारविरत हो, जो न मारता है, न मारनेकी प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

चार ग्रामणेर

४०६—अविरुद्धं विरुद्धेषु अत्तदण्डेषु निवृत्तं ।  
सादानेषु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२४॥  
( अविरुद्धं विरुद्धेषु, आत्तदण्डेषु निवृत्तम् ।  
सादानेष्वनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२४॥ )

अनुवाद—जो विरोधियोंके बीच विरोधरहित रहता है, जो दंड-धारियोंके बीच ( दण्ड-)रहित है, संग्राहियोंमे जो संग्रहरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणवन )

महापण्चक ( धेर )

४०७—यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।  
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२५॥  
( यस्य रागश्च द्वेषश्च मानो म्रक्षश्च पातितः ।  
सर्षप इवाऽऽराग्रात् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२५॥ )

अनुवाद—आरेके ऊपर सरसोंकी भाँति, जिसके ( चित्तसे ) राग, द्वेष, मान, डाह, फेक दिये गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।



राजगृह ( वेणुवन )

पिलिन्द वच्छ ( थेर )

४०८—अकक्कसं विज्जापनिं गिरं सच्चं उदोरये ।

याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

( अकर्कशां विज्ञापनीं गिरं सत्यां उदोरयेत् ।

यया नाऽभिषजेत् किञ्चित् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२६॥ )

अनुवाद—( जो इस प्रकार की ) अकर्कश, आदरयुक्त ( तथा )  
सच्ची वाणीको बोले; कि, जिससे कुछ भी पीडा न होवे,  
उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

कोई स्थविर

४०९—यो 'ध दीघं वा रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुभं ।

लोके अदित्रं नादियते तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

( य इह दीर्घं वा ह्रस्वं वाऽणुं स्थूलं शुभाऽशुभम् ।

लोकेऽदत्तं नादत्ते तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२७॥ )

अनुवाद—( चीज ) चाहे दीर्घ हो या ह्रस्व, मोटी हो या पतली,  
शुभ हो या अशुभ, जो संसारमे ( किसी भी ) बिना दी  
चीजको नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

सारिपुत्त ( थेर )

४१०—आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मि लोके परमिह च ।

निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥

( आशा यस्य न विद्यन्तेऽस्मिन् लोके परस्मिन् च ।

निराशयं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२८॥ )

अनुवाद—इस लोक और परलोकके विषयमे जिसकी आशायें (=चाह) नहीं रह गई हैं, जो आशारहित और आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जैतवन

महामोग्गलान ( थेर )

४११—यस्सालया न विज्जन्ति अञ्जाय अकथंकथो ।

अमतो गधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

( यस्याऽऽलया न विद्यन्ते आज्ञायाऽकथंकथो ।

अमृतावगाधमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२९॥ )

अनुवाद—जिसको आलय (=वृष्णा) नहीं है, जो भली प्रकार जानकर अकथ(-पद) का कहनेवाला है, जिसने गाढे अमृतको पालिया; उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

श्रावस्ती ( पूर्वाराम )

रेवत ( थेर )

४१२—यो'ध पुञ्जञ्च पापञ्च उभो सङ्गं उपच्चगा ।

असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

( य इह पुण्यं च पापं चोभयोः संगं उपात्यगात् ।

अशोकं विरजं शुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३०॥ )

अनुवाद—जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनोंकी आसक्तिको छोड़ दिया, जो शोकरहित, निर्मल, ( और ) शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

चन्दाभ ( थेर )

४१३—चन्दं'व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।

नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥

( चन्द्रमिव विमलं शुद्धं विप्रसन्नमनाविलम् ।

नन्दीभवपरीक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३१॥ )

अनुवाद—जो चन्द्रमाकी भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ=अनाविल है,  
( तथा जिसकी ) सभी जन्मोंकी तृष्णा नष्ट हो गई है, उन्हे  
मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

कुण्डिया ( कोलिय )

सीवलि ( थेर )

४१४—यो इमं पळिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।

तिण्णो पारगतो भायी अनेजो अकथंक्खी ।

अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

( य इमं प्रतिपथं दुर्गं संसारं मोहमन्यगात् ।

तीर्णः पारगतो ध्याय्यनेजोऽकथंक्थी ।

अनुपादाय निर्वृतः तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३२॥ )

अनुवाद—जिसने इस दुर्गम संसार, (=जन्म मरण) के चक्करमे डालने-  
वाले मोह( रूपी ) उलटे मार्गको त्याग दिया, जो  
( संसारसे ) पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (=तर गया )  
है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

सुन्दर समुह ( थेर )

४१५—यो 'ध कामे पहत्त्वान अनागारो परिब्बजे ।

कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥

( य इह कामान् प्रहायाऽनागारः परिब्रजेत् ।

कामभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३३॥ )

अनुवाद—जो यहाँ भोगोंको छोड़, बेघर हो प्रव्रजित (=संन्यासी) हो गया है, जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणुवन )

जटिल ( थेर )

४१६—यो'ध तएहं पहत्त्वान अनागारो परिब्बजे ।

तएहाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥

( य इह तृष्णां प्रहायाऽनागारः परिब्रजेत् ।

तृष्णाभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३४॥ )

अनुवाद—जो यहाँ तृष्णाको छोड़, बेघर बन प्रव्रजित है, जिसकी तृष्णा और ( पुनर्-)जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणुवन )

( भूतपूर्व नट भिक्षु )

४१७—हित्वा मानुसकं योगं दिव्वं योगं उपच्चगा ।

सब्बयोगविसंयुक्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥

( हित्वा मानुषकं योगं दिव्यं योगं उपात्यगात् ।

सर्वयोगविसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३५॥ )

अनुवाद—मानुष(-भोगोंके) लाभोंको छोड़, दिव्य (भोगोंके) लाभको भी ( जिसने ) त्याग दिया, सारे ही लाभोमे जो आसक्त नहीं है, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१८—हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरूपधि ।

सब्बलोकाभिमुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥

( हित्वा रति चाऽरतिं च शीतीभूतं निरूपधिम् ।

सर्वलोकाऽभिभुवं वीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३६॥ )

अनुवाद—रति और अरति (=वृणा)को छोड़, जो शीतल-स्वभाव ( तथा ) क्लेशरहित है, ( जो ऐसा ) सर्वलोकविजयी, वीर है, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणुवन )

वक्कीस ( थेर )

४१९—च्युतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो ।

असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥

( च्युतिं यो वेद सत्त्वानां, उपपत्तिं च सर्वशः ।

असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३७॥ )

अनुवाद—जो प्राणियोंकी च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्तिको भली प्रकार जानता है, ( जो ) आसक्तिरहित सुगत (=सुंदर गतिको प्राप्त ) और बुद्ध (=ज्ञानी ) है, उमे मै ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२०—यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा ।

खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥

( यस्य गतिं न जानन्ति देव-गंधर्व-मानुषाः ।

क्षीणास्त्रवं अरहन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३८॥ )

अनुवाद—जिसकी गति(=पहुँच) को देवता, गंधर्व, और मनुष्य नहीं जानते, जो क्षीणास्त्रव (=रागादिरहित) और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह ( वेणुवन )

धम्मदिन्ना ( थेरी )

४२१—यस्स पुरे च पच्छा च मज्जे च नत्थि किञ्चनं ।

अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

( यस्य पुरश्च पश्चाच्च मध्ये च नाऽस्ति किञ्चन ।

अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३९॥ )

अनुवाद—जिसके पूर्व, और पश्चात् और मध्यमें कुछ नहीं है, जो परिग्रहरहित=आदानरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

अङ्गुलिमाल ( थेर )

४२२—उसमं पवरं वीरं महेसि विजिताविनं ।

अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

( ऋषभं प्रवरं वीरं महर्षिं विजितवन्तम् ।

अनेजं स्नातकं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४०॥ )

अनुवाद—( जो ) ऋषभ (= श्रेष्ठ ), प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

देवहित ( ब्राह्मण )

४२३-पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति ।

अथो जातिक्खयंपत्तो अभिञ्जावोस्सितो मुनि ।

सब्बवोस्सितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

( पूर्वनिवासं यो वेद स्वर्गाऽपायं च पश्यति ।

अथ जातिक्षयंप्राप्तोऽभिज्ञाव्यवसितो मुनिः ।

सर्वव्यवसितव्यवसानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४१॥ )

अनुवाद—जो पूर्व जन्मको जानता है, स्वर्ग और अगतिको जो देखता है; और जिसका ( पुनर्-)जन्म क्षीण हो गया, (जो) अभिज्ञा (= दिव्यज्ञान )-परायण है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

२६-ब्राह्मणवर्ग समाप्त

( इति )





## गाथा-सूची

अककसं	२६।२६	अत्ता हि अत्तनो	१२।४
अकतं दुक्कतं	२२।९	अत्थग्हि जातग्हि	२३।१२
अक्कोच्छि मं	१।४,३	अथ पापानि	१०।८
अक्कोधनं वतवन्तं	२६।१८	अथवस्स अगारानि	१०।१२
अक्कोधेन जिने	१७।३	अनवट्ठितचित्तस्स	३।६
अचरित्त्वा ब्रह्म-	११।१०,११	अनवस्सुतचित्तस्स	३।७
अक्कोसं वधवन्धं	२६।१७	अनिक्कसावो कासावं	१।९
अचिरं वत्त'यं	३।९	अनुपुब्बेन मेघावी	१८।५
अब्जा हि लाभु-	५।१६	अनुपवादो अनुपघातो	१४।७
अट्ठीनं नगरं	११।५	अनेकजातिसंसा-	११।८
अत्तदत्थं	१२।१०	अन्धभूतो अयं	१३।८
अत्तना चोद-	२५।२०	अपि दिब्बे	१४।९
अत्तना' व कतं	१२।५	अपुब्बलाभो च	२२।५
अत्तना' व कतं पापं	१२।९	अप्पका ते	६।१०
अत्तानब्बे तथा	१२।३	अप्पमत्तो अयं	४।१३
अत्तानब्बे पियं	१२।१	अप्पमत्तो पमत्तेसु	२।९
अत्तानमेव पठमं	१२।२	अप्पमादरता होथ	२३।८
अत्ता ह वे जितं	८।५	अप्पमादरतो भिक्खू	२।११,१२
अत्ता हि अत्तनो	२५।२१	अप्पमादेन मघवा	२।१०

अप्पमादो 'मतं	२।१	आसा यस्स	२६।२८
अप्पग्गि चे संहितं	१।२०	इदं पुरे	२३।७
अप्पलाभोपि चे	२५।७	इध तप्पति	१।१७
अप्पस्सुता	११।७	इध नन्दति	१।१८
अभये च भय-	२२।१२	इध मोदति	१।१६
अभित्यरेथ	९।१	इध वस्सं	२०।१४
अभिवादनसीलिस्स	८।१०	इध सोचति	१।१५
अमृतवादी निरयं	२२।१	उच्छिन्द सिनेह-	२०।१३
अयसा 'व मलं	१८।६	उट्ठानकालग्गिह	२०।८
अयोगे पुञ्ज-	१६।१	उट्ठानवतो सतिमतो	२।४
अलङ्कृतो चेपि	१०।१४	उट्ठानेन	२।५
अलज्जिता ये	२२।११	उत्तिट्ठे	१३।२
अवज्जे वज्ज-	२२।१३	उदक हि	६।५, १०
अविरुद्धं विरुद्धेसु	२६।२४	उपनीतवयो	१८।३
असज्झायमला	१८।७	उय्युञ्जन्ति	७।२
असतं भावन-	५।१४	उसभं पवरं	२६।४०
असंसट्ठं	२६।२२	एकं धम्मं	१३।१०
असारे सारमत्तिनो	१।११	एकस्स चरितं	२३।११
असाहसेन धम्मेन	१९।२	एकासनं एकसेय्यं	२१।१६
असुभानुपत्तिं	१।८	एतं खो सरणं	१४।१४
अस्सद्धो अकतब्बू	७।८	एतं दव्वं	२४।१३
अस्सो यथा भद्रो	१०।१६	एतमत्थवसं	२०।१७
अहं नागो' व	२३।	एतं विसेसतो	२।२
अहिंसका ये	१७।५	एतं हि तुग्गे	२०।३
आकासे च पदं	१८।२०, २१	एथ पस्सथिमं	१३।५
आरोग्यपरमा	१५।८		

एवम्भो पुरिस	१८११४	चन्दं 'व विमल-	२६१३१
एवं संकारभूते-	४११६	चरञ्जेनाधि-	५१२
एसो'व मगो	२०१२	चरन्ति वाला	५१७
ओवदेय्य	६१२	चिरप्पवासि	१६१११
कण्हं धम्मं	६११२	द्युतिं यो वेदि	२६१३७
कथिरन्वे	२२१८	छन्दजातो	१६११०
कामतो जायते	१६१७	छिन्द सोतं	२६११
कायप्पकोपं	१७१११	छेत्वा नन्दि	२६११६
कायेन संवरो	२५१२	जयं वेरं पसवति	१५१५
कायेन सवुता	१७११४	जिघच्छापरमा	१५१७
कासावकण्ठा	२२१२	जीरन्ति वे राज-	१११६
किच्छो मनुस्स-	१४१४	भूय भिक्खू	२५११२
किं ते जटाहि	२६११२	झायिं विरज-	२६१४
कुम्भूपमं	३१८	तञ्च कम्मं	५१९
कुसो यथा	२२१६	तण्हाय जायते	१६१८
को हं पठवि	४११	ततो मला	१८१९
कोधं जहे	१७११	तप्पाभिरति	६११३
खन्ति परसं तपो	१४१६	तप्पायमादि	२५११६
गतद्धिनो	७११	तथेव कत-	१६११२
गम्भमेके	९१११	तं पुत्त-पसु-	२०११५
गम्भीरपञ्ज-	२६१२१	तं वो वदामि	२४१४
गहकारक	१११९	तस्मिनाय पुरस्वता	२४११०, १
गामे वा यदि	७१५	तस्मा पिथं	१६१३
चक्खुना	२५११	तस्मा हि धीरं	१५११२
चत्तारि ठानानि	२२१४	तिण्ढोसानि २४१२६, २४, २५, २३	
चन्दनं तगरं	४११२	तुम्हिहे किच्चं	२०१४

ते क्षायिनो	२।३	न तं दहं	२४।१२
ते तादिसे	१४।१८	न तं माता	३।११
तेसं सम्पन्न-	४।१४	न तावता धम्म-	१९।४
द्वदन्ति वे	१८।१५	न तेन अरियो	१९।१५
दन्तं नयन्ति	२३।२	न तेन थेरो	१९।५
दिवा तपति	२६।५	न तेन पडितो	१९।३
दिसो दिसं	३।१०	न तेन भिक्खू	१९।११
दीघा जागरतो	५।१	न तेन होति	१९।१
दुक्खं	१४।१३	नत्थि ज्ञानं	२५।१३
दुग्गिगहस्स	३।३	नत्थि राग-	१५।६
दुप्पव्वज्जं	२१।१३	नत्थि राग-	१८।१७
दुल्लभो	१४।१५	न नग्ग-	१०, १३
दृग्गमं	३।५	न परेसं	४।७
दूरे सन्तो	२१।१५	न पुप्फगन्धो	४।११
धनपालको	२३।५	न ब्राह्मणस्स-	२६।७
धम्म चरे	१३।३	न ब्राह्मणस्से-	२६।८
धम्मपीती	६।४	न भजे	६।३
धम्माराभो	२५।५	न मुण्डकेन	१९।९
न अत्तहेतू	६।९	न मोनेन	१९।१३
न अन्तलिक्खे	९।१२, १३	न वाक्करण-	१९।७
न कहापण-	१४।८	न वे कदरिया	१३।११
नगरं यथा	२२।१०	न सन्ति पुत्ता	२०।१६
न चाइं	२६।१४	न सीलव्वत-	१९।१६
न चाहु	१७।८	न हि एतेहि	२३।४
न जटाहि	२६।११	न हि पापं	५।१२
न तं कम्मं	५।८	न हि वेरेन	१।५

निट्टं गतो	२४।१८	पियतो जायते	१६।४
निधाय दण्डं	२६।२३	पुञ्जञ्चे पुरिसो	९।३
निधीनं'व	६।१	पुत्ता म' त्थि	५।३
नेक्खं	१७।१०	पुब्बेनिवासं	२६।४१
नेतं खो सरणं	१४।११	पूजारहे	१४।१७
नेव देवो	८।६	पेमतो जायते	१६।५
नो च लभेथ	२३।१०	पोराणमेतं	१७।७
पञ्च छिन्दे	२५।११	फन्दनं चपलं	३।१
पटिसन्धार-	२५।१७	फुसामि नेक्खम्म	१९।१७
पठवीर्यमो	७।६	फेनूपमं	४।३
पण्डुपलासो	१८।१	भद्रो 'पि	९।५
पथव्या एकरज्जेन	१३।१२	मगानट्टगिको	२०।१
पमादमनु-	२।६	मत्तासुखपरिच्चागा	२१।१
पमादमप्पमादेन	२।८	मधू'व मज्जती	५।१०
परदुक्खूपदानेन	२१।२	मनुजस्स पमत्त-	२४।१
परवज्जानुपस्सि-	१८।१९	मनोप्पकोपं	१७।१३
परिजिण्णमिदं	११।३	मनो पुञ्चंगमा	११।२
परे च न	१।६	ममेव कत-	५।१५
पविवेकरसं	१५।९	मलित्थिया	१८।८
पंसुकूलधरं	२६।१०	मातरं पितरं	२१।५, ६
पस्स चित्तकतं	११।२	मा पमाद-	२।७
पाणिग्घि चे	९।९	मा पियेहि	१६।२
पापञ्चे पुरिसो	९।२	मा' वमज्जेथ पाप-	९।६
पापानि परि-	१९।१४	मा' वमज्जेथ पु-	९।७
पापो' पि पस्सति	९।४	मा वोच फरुसं	१०।५
पामोज्ज बह-	२५।२२		

मासे मासे कुस-	५१११	यस्स कायेन	२६१९
मासे मासे सहस्सेन	८१७	यस्स गति	२६१३८
मिद्धी यथा	२३१६	यस्स चेतं समु-	१९१८
मुच्च पुरे	२४११५	यस्स चेतं समु-	१८११६
मुहुत्तमपि	५१६	यस्स छत्तिसती	२४१६
मेत्ताविहारी	२५१९	यस्स जालिनी	१४१२
य अच्चन्त-	१२१६	यस्स जितं	१४११
यं एसा सहती	२४१२	यस्स पापं	१३१७
यं किञ्चि यिट्ठं	८१९	यस्स पारं अपारं	२६१३
यं किञ्चि सि-	२२१७	यस्स पुरे च	२६१३९
यन्वे विञ्जू	१७१९	यस्स रागो च	२६१२५
यतो यतो सम्म-	२५११५	यस्सालया न	२६१२९
यथागारं दुच्छन्नं	१११३	यस्सासवा	७१४
यथागारं सुच्छन्नं	१११४	यस्सिन्द्राणि	७१५
यथा दण्डेन	१०१७	यानिं मानि	१११४
यथापि पुप्फ-	८११०	याव जीवम्पि	५१५
यथापि भमरो	४१६	यावदेव अनत्थाय	५११३
यथापि मूले	२४१५	याव हि वनो	२०११२
यथापि रहदो	६१७	ये च खो	६१११
यथापि रुचिरं	४१८,९	ये झानपसुता	१४१३
यथा बुब्बुलकं	१३१४	ये रागरत्ता	२४११४
यथा सङ्कार-	४११५	येसं च सुसमा-	२११४
यदा द्वयेसु	२६१२	येसं सन्निचयो	७१३
यग्हा धम्मं	२६११०	येसं सम्बोधि	६११४
यं हि किच्चं	२११३	यो अष्पदुट्टस्स	९११०
यम्हि सच्चं च	१९१६	यो इमं पलिपथं	२६१३२

योगा वे जायती	२०।१०	वृची पकोपं	१७।१२
यो च गाथा-	८।३	वज्रञ्च वज्रतो	२२।१४
यो च पुब्बे	१३।६	वनं छिन्दथ	२०।११
यो च बुद्धञ्च	१४।१२	वरं अस्सतरा	२३।३
यो च वन्तकसाव-	१।१०	वस्सिका विय	२५।१८
यो च वस्ससतं	८।८	वहुम्पि चे	१।१९
यो च समेति	१९।१०	वहुं वे सरणं	१४।१०
यो चेतं सहती	२४।३	वाचानुरक्खी	२०।९
यो दण्डेन	१०।९	वाणिजो' व	९।८
यो दुक्खस्स	२६।२०	वारिजो' व	३।२
यो'ध कामे	२६।३३	वाल्लंगतचारी	१५।११
यो'ध तण्हं	२६।३४	वाहितपापो	२६।६
यो'ध दीघं	२६।२७	वितक्कपमथितस्स	२४।१६
यो'ध पुञ्जं	२६।३०	वितक्कूपसमे च	२४।१७
यो'ध पुञ्जं	१९।१२	वीनतण्हो अनादानो	२४।१९
यो निब्बनथो	२४।११	वेदनं फरुसं	१०।१०
यो पाणमतिपातेति	१८।१२	सु चे नेरेसि	१०।६
यो वालो	५।४	स चे लभेथ	२६।९
यो मुख-	२५।४	सच्चं भणे	१७।४
यो वे उप्पतितं	१७।२	सदा जागरमानानं	१७।६
यो सहस्स-	८।४	सद्धो सीलेन	२१।१४
यो सासनं	१२।८३	सन्तकायो	२५।१९
यो ह वे दहरो	२५।२३	सन्तं तस्स	७।७
रुतिया जायते	१६।६	सब्बत्थ वे	६।८
रमणीयानि अरब्भानि	७।१०	सब्बदानं	२४।२१
राजतो वा	१०।११	सब्बपापस्स	१४।५

सञ्चसंयोजनं	२६।१५	सुखो बुद्धानं	१४।१६
सञ्चसो नाम-	२५।८	सुजीवं	१८।१०
सञ्चाभिभू	२४।२०	सुञ्जागार	२५।१४
सञ्चे तसन्ति	१०।१,२	सुदस्सं वज्र-	१८।१८
सञ्चे धम्मा	२०।७	सुदुहसं	३।४
सञ्चे सङ्खारा अ-	२०।५	सुपबुद्धं	२१।७—१२
सञ्चे सङ्खारा दु-	२०।६	सुभानुपस्सिं	१।७
सरितानि	२४।८	सुरामेख्यपानं	१८।१३
सलाभं	२५।६	सुसुखं वत	१५।१—४
सवन्ति सञ्च-	२४।७	सेखो पठविं	४।२
सहस्सग्धि चे गाथा	८।२	सेय्यो अयो-	२२।३
सहस्सग्धि चे वाचा	८।१	सेलो यथा	६।६
साधु दस्सन—	१५।१०	सो करोहि	१८।२,४
सारञ्च	१।१२	हृत्थसञ्जतो	२५।३
सिञ्च भिक्खू	२५।१०	हनन्ति भोगा	२४।२२
सीलदस्सन—	१६।९	हंसा' दिच्च-	१३।९
सुकरानि	१२।७	हिस्वा मानुसकं	२६।३५
सुखकामानि	१०।३,४	हिस्वा रतिं	२६।३६
सुखं याव	२३।१४	हिरीनिसेधो	१०।१५
सुखा मत्तेय्यता	२३।१३	हिरीमता च	१८।११
		हीनं धम्मं	१३।१



## शब्द-सूची

अकिञ्चन—राग, द्वेष और मोहसे रहित ।

अनुसय (=अनुशय )—कामराग (=भोगतृष्णा ), प्रतिघ (=प्रति-  
हिंसा ), दृष्टि (=उल्टी धारणा ), विचिकित्सा (=सन्देह ),  
मान (=अभिमान ), भवराग, (=संसारमे जन्मनेकी तृष्णा ),  
अविद्या ।

अरिय (=आर्य )—स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्  
(=मुक्त ) ।

आभस्सर (=आभास्वर )—रूपलोक (=जहाँके प्राणियोंका शरीर  
प्रकाशमय है )की एक देवजाति ।

आयतन—आँख, कान, नाक, जीभ, काया (=त्यक् ) और मन ।

आसव् (=आस्रव मल ),—कामास्रव (=भोगसंबंधी मल ), भवास्रव  
(=भिन्न भिन्न लोकोमे जन्म लेनेका लालचरूपी मल ),  
दृष्ट्यास्रव (=उल्टी धारणा रूपी मल ), अविद्यास्रव ।

उपधि (=उपाधि )—स्कन्ध, काम, क्लेश और कर्म ।

खन्ध (=स्कन्ध )—रूप (=परिमाण और त्रोल रखनेवाला तत्त्व ),  
वेदना, सज्ञा, संस्कार, ( वेदना आदि तीन, रूप और

विज्ञानके सम्पर्कसे उत्पन्न विज्ञानकी अवस्थायें हैं ),  
विज्ञान (=चेतना, परिमाण और तोल न रखनेवाला तत्त्व ) ।

थेर—(=स्थविर ) बृद्ध भिक्षु ।

थेरी—(=स्थविरा ) बृद्ध भिक्षुणी ।

पातिमोक्ख (=प्रातिमोक्ष )—विनय पिटकमें कहे भिक्षु-भिक्षुणियोंके पाराजिक, सघादिसेस आदि नियम । भिक्षुओके लिये उनकी संख्या इस प्रकार है—

पाली विनय ( सर्वास्तिवाद )

१. पाराजिक	४	४
२. संघावशेष	१३	१३
३. अनियत	२	२
४. निःसर्गिक	२३	३०
५. पातयन्तिक	९२	९०
६. प्रातिदेशनीय	४	४
७. शैक्ष	७३	११३
८. अधिकरणशमथ	<u>७</u>	<u>७</u>
	२१८	२६३

मार—इन्द्रसे ऊपर और ब्रह्मासे नीचेका देवता, जिसे वैदिक साहित्य में प्रजापति कहते हैं । राग, द्वेष, मोह आदि मनकी दुष्प्रवृत्तियाँ, जो सत्यके मार्गमें बाधक होती हैं, उन्हें ही रूपक के तौर पर मार नामका एक देवता माना गया है ।

सञ्जोजन (=संयोजन )—सत्कायदृष्टि (=जीवनको रूप-विज्ञानके संयोगसे न मान कर, कायामें एक निश्च चेतनकी अलग कल्पना करना ), विचिकित्सा (=संदेह ), शीलव्रतपरामर्श

(=परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न न करके, बाह्य आचार और व्रतोंसे कृतकृत्यता मानना), 'कामराग' (=स्थूल-शरीर-धारियों के भोगोंकी तृष्णा), रूपराग (=प्रकाशमय शरीर धारियोंके भोगोंकी तृष्णा), अरूपराग (=रूपरहित देवताओंके भोगोंकी तृष्णा), प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), मान (=अभिमान), औदत्त्य (=उद्धतपना), और अविद्या ।

सम्बोज्झङ्ग (=संयोज्य) — स्मृति, धर्मविचय (=धर्मपरीक्षा), वीर्य (=उद्योग), प्रीति, प्रश्रद्धि (=शान्ति), समाधि, उपेक्षा ।

सामणेर (=श्रामणेर) — भिक्षु होनेका उम्मेदवार बौद्ध साधु, जिसे भिक्षुसंघने अभी उपसम्पन्न (=भिक्षुदीक्षासे दीक्षित) नहीं किया ।

शील (=शील) — हिंसा-विरति, मिथ्याभाषण-विरति, चोरीसे विरति, व्यभिचारविरति, मादक द्रव्य सेवन-विरति—यह पाँच शील (=सदाचार) गृहस्थ और भिक्षु दोनोंके समान हैं । अपराङ्मभोजन त्याग, नृत्य गीत त्याग, माला आदिके शृंगार का त्याग, महार्घ शय्याका त्याग, तथा सोने चाँदीका त्याग, यह पाँच केवल भिक्षुओंके शील हैं ।

सेख (=शैक्ष) — अर्हत् (=मुक्त) पदको नहीं प्राप्त हुए, आर्य (=स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी) शैक्ष कहे जाते हैं, क्योंकि वह अभी शिक्षणीय हैं ।

स्रोतापन्न (=स्रोतआपन्न) — आध्यात्मिक विकास करते जब प्राणी इस प्रकारकी मानसिक स्थितिमें पहुँच जाता है; कि, फिर वह नीचे नहीं गिर सकता और निरन्तर आगे ही बढ़ता

जाता है; ऐसी अवस्थामे पहुँचे पुरुषको सोतापन्न कहते हैं ।  
सोत (=स्रोतः) = निर्वाणगामी नदी-प्रवाहमें जो आपन्न  
(=पड़ गया) है ।\*

---

प्रज्ञाप्रासादमाख्याऽशोच्यः शोचतो जनान् ।  
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्रज्ञोऽनुपश्यति

योगभाष्य १।४७

कामं कामयानस्य यदा कामः समृध्यते ।  
अथैनमपरः कामः क्षिप्रमेव प्रवाधते ॥

न्यायभाष्य ४।१।५७

न तेन वृद्धो भवति—मनु० २।४५० १६।५

---

\* बौद्ध पारिभाषिक शब्दोंके विशेष परिचयके लिये बुद्ध-चर्याकी  
शब्दसूची देखिये ।



## विक्रीय पुस्तकें

अनागारिक धर्मपाल—

भगवान बुद्धके उपदेश ( हिन्दी )

३)

What did Lord Buddha teach ? 0 4 0

Relation between Buddhism and  
Hinduism

0 4 0

World's Debt to Buddhism

0 4 0

पंडित शिवनारायण—

Sarnath—A Guide

0 3 0

Buddhism

0 2 0

Asoka

0 2 0

Dr. S. N. दासगुप्त—

Message of Buddhism

0 2 0

Miss A. C. Albers.—

Jataka Stories for children

0 4 0

Life of Buddha for children

0 4 0

महाबोधि-पुस्तक-भंडार, ऋषिपत्तन

सारनाथ ( बनारस ) ।

